वर्ष : ७
अंक : ५३

संत श्री आसारामजी आश्रम द्वारा प्रकाशित

मई : १९९७

ऋषि प्रसाद

पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

ऋषि प्रसाद

वर्ष : ७
अंक : ५३
९ मई १९९७

सम्पादक : क. रा. पटेल
प्रे. खो. मकवाणा

मूल्य : रू. ६-००

सदस्यता शुल्क

भारत, नेपाल व भूटान में
(१) वार्षिक : रू. ५०/-
(२) आजीवन : रू. ५००/-

विदेशों में
(१) वार्षिक : US $ 30
(२) आजीवन : US $ 300

कार्यालय
'ऋषि प्रसाद'
श्री योग वेदान्त सेवा समिति
संत श्री आसारामजी आश्रम
साबरमती, अमदावाद-३८० ००५
फोन : (०७९) ७४८६३१०, ७४८६७०२.

प्रकाशक और मुद्रक : क. रा. पटेल
श्री योग वेदान्त सेवा समिति,
संत श्री आसारामजी आश्रम, मोटेरा, साबरमती, अमदावाद-३८० ००५ ने विनय प्रिन्टिंग प्रेस, मीठाखली, अमदावाद, पारिजात प्रिन्टरी, राणीप, अमदावाद, भार्गवी प्रिन्टर्स, राणीप, अमदावाद में छपाकर प्रकाशित किया।

कहीं तेरी भक्ति का सहारा न छूट जाए।
कोई तेरी करुणा का सागर न लूट जाए॥
ऐसी कृपा गुरुवर तुम मुझ पर करना।
कि तेरी ही भक्ति और सेवा में यह तन छूट जाए॥

प्रस्तुत है...

१. गीता-दर्शन ... २
परम शांति
२. साधनानिधि ... ५
सत्संग से विवेक-जागृति
३. ज्ञानगंगोत्री ... ८
जो जाने सुख पावे...
अपना परम लक्ष्य मत चूको
४. विवेकदर्पण ... ११
मनोनिग्रह की महिमा
५. जीवन पाथेय ... १२
आत्मज्ञान की महिमा
६. गुरुप्रसाद ... १४
दीक्षा से दिशा
७. जीवन सौरभ ... १७
मुंज की दृढ़ गुरुभक्ति
८. आंतर आलोक ... २०
आपकी सबसे बड़ी कमजोरी
९. सत्संग-सरिता ... २३
माया से पार होने का उपाय : प्रपत्तियोग
१०. योगामृत ... २६
परमानंद की प्राप्ति का साधन
११. कथा-अमृत ... २७
जनकपुरी में लगी आग
संसार कर्मभूमि है
१२. शरीर-स्वास्थ्य ... ३०
सेवफल
अनार
१३. संस्था समाचार ... ३१

'ऋषि प्रसाद' के सदस्यों से निवेदन है कि कार्यालय के साथ पत्रव्यवहार करते समय अपना रसीद क्रमांक एवं स्थायी सदस्य क्रमांक अवश्य बतायें।

परम शांति

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं :

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत ।
तत्प्रसादात्परां शांतिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम् ॥

'हे भारत ! तू सब प्रकार से उस परमेश्वर की ही शरण में जा । उस परमात्मा की कृपा से ही तू परम शांति को तथा शाश्वत् परमधाम को प्राप्त होगा ।' (श्रीमद्भगवद्गीता : १८.६२)

शांति तीन प्रकार की होती है :

१. आधिभौतिक शांति
२. आधिदैविक शांति
३. आध्यात्मिक शांति

उपरोक्त तीनों प्रकार की शांति हमारे व्यवहार में दिखती है ।

किसी भी प्रकार का उपद्रव होवे और वह दूर हो जाये तो कहेंगे कि : 'हाशऽऽऽ...! शांति... !' यह है आधिभौतिक शांति ।

किसी देवी-देवता का कोप हुआ हो, नौकरी नहीं मिलती हो, लड़के-लड़की की शादी की चिन्ता सताती हो, आदि । जब ये विघ्न हट जाते हैं तो कहेंगे कि : 'हाशऽऽऽ...! शांति... !' यह है आधिदैविक शांति ।

ये शांतियाँ तो बेचारी दिन में कितनी ही बार आएँ और फिर चली जाएँ लेकिन एक बार परम शांति मिल जाये तो मौत भी तुमको अशांत नहीं कर सकेगी, इन्द्र का वैभव भी तुमको प्रलोभन में नहीं डाल सकेगा और शुकदेवजी जैसी कौपीनधारी अवस्था भी तुमको अपने में दीनभाव उत्पन्न नहीं करने देगी ।

धन से जो गरीब है वह गरीब नहीं है, सत्ता से जो गरीब है वह गरीब नहीं है लेकिन विचारों से जो गरीब है, वह महादरिद्र है और विचारों से जो सेठ है वह सेठों का भी सेठ है ।

राजा परीक्षित कोई साधारण राजा न थे । उनके पास सात द्वीपों का स्थायी राज्य था और अनेक राजाओं पर उन्होंने विजय प्राप्त की थी। इतना विशाल राज्य और सैन्यबल होते हुए भी परीक्षित कहते हैं कि कोई महापुरुष मिलें और ईश्वर-तत्त्व का प्रसाद दें तभी मुझे परम शांति मिलेगी, बाकी सब तो मैंने देख लिया ।

जब शुकदेवजी महाराज मिले तब परीक्षित पहला प्रश्न करते हैं : ''जब मृत्यु निकट हो तब जीव को क्या करना चाहिये ?''

शुकदेवजी कहते हैं : ''इन्द्रियों के भोगों में रत जीवों के लिये सात दिन तो क्या सात जन्म भी कम हैं लेकिन तुझ जैसे बुद्धिमान् के लिये तो सात दिन भी अधिक हैं । जो नश्वर पदार्थों को नश्वर जानते हुए शाश्वत में प्रीति रखें, ऐसों के लिये तो सात दिन भी अधिक हैं । हे परीक्षित ! तू भगवान की शरण जा ।''

धन से जो गरीब है वह गरीब नहीं है, सत्ता से जो गरीब है वह गरीब नहीं है लेकिन विचारों से जो गरीब है, वह महादरिद्र है और विचारों से जो सेठ है, वह सेठों का भी सेठ है ।

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत ।

गाँधीजी के जीवन में भी जब चमत्कार होते तब गाँधीजी वे अनुभव लोगों को सुनाते थे । गोलमेज कार्यक्रम में भाग लेने आईन्स्टीन जर्मनी से आये थे और गाँधीजी भारत से गये थे । उसमें गाँधीजी ने इतना सुन्दर व्याख्यान किया कि उनका उपहास करनेवाले लोग भी उनसे प्रभावित हो गये तथा उनकी हँसी उड़ानेवाले अंग्रेजों ने भी तालियाँ बजाई

और उनका अनुमोदन किया ।

लोगों ने गाँधीजी से पूछा : ''आप ऐसा प्रवचन कहाँ से पढ़कर आये ? यह सब तैयारी कैसे की ?''

गाँधीजी कहते हैं : ''मैं जब बोलता हूँ तब मैं नहीं रहता, भगवान की शरण चला जाता हूँ । मेरे बोलने के पीछे मेरे राम का हाथ होता है इसलिये मेरी बोली प्रभावयुक्त होती है ।''

हम भी शिष्टाचार में कह देते हैं कि मेरे काम के पीछे ईश्वर का हाथ है लेकिन यदि सफल हुए तो भीतर 'मैं' बैठा ही होता है कि 'यह तो मैंने किया' और यदि विफल हुए तो कहेंगे कि 'इसकी गलती... उसकी गलती...' या 'जो भगवान की मर्जी...' मानो भगवान ही काम बिगाड़ने को बैठे हैं ।

वस्तुतः जीव के प्रत्येक कार्य के पीछे ईश्वर की सत्ता है । ईश्वर की सत्ता जब तक महसूस नहीं होती तब तक मनुष्य अहं में, जीवभाव में बैठा होता है । जब तक मनुष्य सत्संग नहीं करता तब तक उसे ईश्वर के रस की अनुभूति नहीं होती ।

वस्तुतः जीव के प्रत्येक कार्य के पीछे ईश्वर की सत्ता है । ईश्वर की सत्ता जब तक महसूस नहीं होती तब तक मनुष्य अहं में, जीवभाव में बैठा होता है । जब तक मनुष्य सत्संग नहीं करता तब तक उसे ईश्वर के रस की अनुभूति नहीं होती । जब तक ईश्वरीय रस की अनुभूति नहीं होती तब तक बाहर के रस का आकर्षण-विकर्षण एवं अशांति नहीं मिटती एवं दुःख निर्मूल नहीं होते । दुनिया की सब चीजें एक व्यक्ति को दे दो । खुशियों का उसे सरताज पहना दो, सारा सौन्दर्य, सारा धन एक व्यक्ति को दे दो लेकिन जब तक उसके जीवन में गीतारूपी ज्ञान नहीं होगा, उपनिषदों का अमृत नहीं होगा तब तक उसका दुर्भाग्य तो उसके साथ ही रहेगा । मनुष्य का सबसे बड़ा दुर्भाग्य है बार-बार जन्मना और बार-बार मरना । बड़े में बड़ा सौभाग्य है :

मनुष्य का सबसे बड़ा दुर्भाग्य है बार-बार जन्मना और बार-बार मरना ।

लब्ध्वा ज्ञानं परां शांतिमचिरेणाधिगच्छति ।

उस आत्मज्ञान की उपलब्धि होवे तो परम शांति । शुकदेवजी उस परम शांति को प्राप्त हुए महापुरुष थे । परीक्षित के सभामंडप में पहुँचने से पहले कुछ अज्ञानी लोगों ने उनका अपमान किया, पत्थर उछाले लेकिन उनके चित्त में अशांति नहीं हुई और सोने के सिंहासन पर बिठाकर परीक्षित उनका अर्घ्य-पाद्य से पूजन करते हैं तब भी शुकदेवजी को हर्ष नहीं होता ।

जैसे सूर्य के निकट रात्रि नहीं जा सकती, सूर्य को दीमक नहीं लग सकती, ऐसे ही जिसको परम शांति हो गई हो, आत्मा-परमात्मा का जिसको अनुभव हो चुका हो, ज्ञान का दीपक जिसमें एक बार प्रकाशित हो चुका हो उसे कोई आँधी नहीं बुझा सकती । उसी की प्राप्ति के लिये मनुष्य को बुद्धि मिली है । सच में सुखी भी वही रह सकता है जिसने परम शांति का अनुभव कर लिया है ।

लब्ध्वा ज्ञानं परां शांतिम्...

अधिकांश लोग कहते हैं : ''बाबाजी ! समय नहीं मिलता... समय का अभाव है ।' अरे भाई ! आपके पास जो काम है, उससे भी अधिक काम पुराने समय के राजाओं के पास रहता था और आप लोगों के पास जितनी सुविधाएँ हैं, पुराने व्यक्तियों के पास उतनी न थीं । अभी हम बस में, रेल में, हवाई जहाज में सफर कर कार्य शीघ्रता से पूरा कर सकते हैं । पुराने समय में तो बैलगाड़ी जोतनी पड़ती थी । कहीं दूर जाना हो तो हफ्ताभर पहले से तैयारियाँ करनी पड़ती थीं ।

गाड़ा जोतते-जोतते पटेल शहर जाय ।
गाम का लाय और घर का भूल आय ॥

ऐसा करते हुए भी लोग समय बचाते थे । गलाडूब व्यवहार में रहते हुए भी राजा-महाराजा लोग समय बचाकर गुरुओं के द्वार पर जाते थे और आत्मज्ञान

पाते थे। आत्मतेज से वे तेजस्वी रहते थे और परम शांति पाते थे।

साधुओं का नाम लेवें तो शुकदेवजी महाराज का नंबर पहले आता है। ऐसे शुकदेवजी महाराज के गुरु राजा जनक योगशक्ति से सम्पन्न अठारह वर्षीय युवती सुलभा का पूजन करते हैं।

सुलभा जब राजा जनक के दरबार में पहुँची तो उसके निर्दोष, संयमी व प्रभावशाली व्यक्तित्व एवं ज्ञाननिष्ठा को देखकर राजा जनक की दृष्टि स्थिर हो गई। उन्होंने पूछा : ''तुम क्या चाहती हो ?''

सुलभा ने कहा :

''राजन्! मैं आपसे शास्त्रार्थ करना चाहती हूँ। आपको राजकाज के गलाडूब व्यवहार में परमात्मप्राप्ति कैसे हुई ? अगर मेरा परिचय पूछो तो 'सुलभा' मेरा नाम है। क्षत्रिय कुल में मेरा जन्म हुआ है।''

संतशिरोमणि शुकदेवजी के गुरु आनंदित होकर योगिनी सुलभा का पूजन करते हैं। यह आत्मविद्या कैसी है ! जनक जैसे राजा बारह वर्षीय अष्टावक्र का पूजन करते हैं। यह आत्मविद्या की ही महिमा है !

बारह वर्षीय अष्टावक्र के शरीर में आठ वक्र हैं। ठिंगना कद, काला रंग व टेढ़े-मेढ़े अंग... एकदम कुरूप... और चलें तो ऐसा लगे कोई विचित्र प्राणी आया। फिर भी उनमें आत्मविद्या चमकती है और उनकी पूजा होती है।

जिसकी प्राप्ति के बाद और कुछ प्राप्त करना शेष नहीं रहता तथा जिससे बढ़कर अन्य कोई लाभ नहीं होता, हम उसी की प्राप्ति का दृढ़ संकल्प करें...

हम सब भी अपने 'मैं' रूपी अहंकार का विसर्जन करते हुए उस परमेश्वर की, परमेश्वर के अनुभव का रसपान करानेवाले आत्मविद्या के समर्थ आचार्य किसी सद्गुरु की शरण लेकर उस परम शांति व परमानंद को प्राप्त करने का यत्न करें जिसकी प्राप्ति के बाद और कुछ प्राप्त करना शेष नहीं रहता तथा जिससे बढ़कर अन्य कोई लाभ नहीं होता, हम उसी की प्राप्ति का दृढ़ संकल्प करें...

ॐ आनंद... ॐ शांति... ॐ... ॐ... ॐ...

❀

सत्संग से विवेक-जागृति

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

सत्संग से वंचित होना महान पापों का फल है। किसी भी कीमत पर सत्संग का त्याग नहीं करना चाहिए। वशिष्ठजी कहते हैं कि चांडाल के घर की भिक्षा एक ही बार मिले, वह भी ठीकरे में लेकर खाना पड़े पर जहाँ ज्ञान का सत्संग मिलता हो वहीं पड़े रहना चाहिए।

कोई बड़ा धनवान हो चाहे बड़ा सम्राट हो, अंत में तो वह धन को, साम्राज्य को यहीं छोड़कर चला जाएगा और ब्रह्मविद्या नहीं होगी तो किसी न किसी माँ के गर्भ में जाकर लटकने का, फिर जन्म लेने का और मरने का दुर्भाग्य चालू रहेगा। जिसको सत्संग में रुचि है, प्रीति है, श्रद्धा है, वह देर-सबेर ज्ञान पाकर मुक्त हो जाएगा।

जैसे आपको कोई चीज अच्छी लगती है तो आप उसका त्याग नहीं करते हैं, फेंक नहीं देते हैं, संभालकर घर में रख लेते हैं। चाहे घर छोटा भी हो, कमरे में जगह नहीं हो तो छत पर भी रख देते हो। ऐसे ही जो लोग सत्संग में जाते हैं, उन्हें सत्संग की कोई-न-कोई बात तो अच्छी लगती ही है। जो बात अच्छी लगे उसे अगर दिलरूपी घर में जगह नहीं है तो दिमाग रूपी छत में भी रख लेंगे तो कभी-न-कभी काम आएगी।

सत्संग की आधी घड़ी सुमिरन बरस पचास।
बरखा बरसे एक घड़ी अरहट फिरे बारों मास॥

जैसे अरहट बारहों मास फिरता रहे फिर भी उतना पानी नहीं दे पाता लेकिन एक घड़ी की वर्षा बहुत सारा पानी बरसा देती है। ऐसे ही सत्संग से भी अमाप लाभ मिलता है।

सत्संग ही साधना को पुष्ट करता है। साधक ऐसे ही जप करता रहेगा तो कभी तो ऊब जाएगा पर सत्संग सुनता रहेगा तो कभी जप की महिमा सुनेगा, कभी ध्यान की महिमा सुनेगा कभी ज्ञान की बातें सुनेगा तो जप में, ध्यान में, ज्ञान में रुचि होगी। काम करते-करते सत्संग में सुनी हुई बातों को याद रखेगा तो भी बहुत लाभ होगा।

सत्संग ऐसी बढ़िया चीज है कि सत्संग सुनते रहने से आदमी के चित्त में विवेक जगता है। एक होता है सामान्य विवेक, दूसरा होता है मुख्य विवेक। सामान्य विवेक याने शिष्टाचार। कैसे उठना, कैसे बैठना, कैसे बोलना, बड़ों के साथ कैसा व्यवहार करना, महापुरुष हैं तो उनसे दो कदम पीछे चलना, कुछ पूछे तो विनम्रता से उत्तर देना, उनके सामने अपने चित्त की दशा का वर्णन करना, यह सामान्य विवेक सत्संग में मिलता है। सत्संग सुनते-सुनते जब आदमी के चित्त की पहली भूमिका बन जाती है तो सामान्य विवेक या शिष्टाचार अपने-आप पैदा होने लगता है।

सत्संग से वंचित होना महा पापों का फल है। किसी भी कीमत पर सत्संग का त्याग नहीं करना चाहिए। सत्संग ऐसी बढ़िया चीज है कि सत्संग सुनते रहने से आदमी के चित्त में विवेक जगता है।

दूसरा विवेक है मुख्य विवेक। वह है आत्मा-अनात्मा का विवेक। सत्संग में सुनी हुई बातें याद रखकर उसका मनन करने से मुख्य विवेक जगता है। एक होती है रहनेवाली चीज, वह है आत्मा। दूसरी होती है छूटनेवाली, नष्ट होनेवाली चीज, वह है अनात्मा, मायारूपी जगत के पदार्थ। जो अनात्म पदार्थ हैं वे चाहे कितने भी कीमती हों, कितने भी सुंदर हों, कितने भी सुखद लगें किन्तु कभी तो उनका वियोग होगा ही। या तो वह चीज नहीं रहेगी या तो

उसे 'मेरी' कहनेवाला शरीर नहीं रहेगा । संसार की कोई भी चीज हो वह केवल देखनेभर को है, कहनेभर को हमारी है । आखिर तो छूटेगी ही । जब चीज छूट जाये तब रोना पड़े, उसके वियोग का दुःख सहना पड़े उसके पहले समझकर उसमें से ममता छोड़ दें। जो छूटनेवाली चीज है उसे छूटनेवाली समझ लें और जो नहीं छूटनेवाला है, सदा साथ देनेवाला है उस आत्मा में प्रीति कर लें तो काम बन जाएगा ।

हम लोग क्या करते हैं कि जो छूटनेवाली चीजें हैं उनसे प्रीति करते हैं और जो सदा साथ रहनेवाला है उसकी ओर ध्यान नहीं देते हैं । जो प्रीति अपने आत्मा में करता है और छूटनेवाली चीजों का उपयोग करता है उसका जीवन सुखमय हो जाता है ।

हम लोग क्या करते हैं कि जो छूटनेवाली चीजें हैं उनसे प्रीति करते हैं और जो सदा साथ रहनेवाला है उसकी ओर ध्यान नहीं देते हैं । जो प्रीति अपने आत्मा में करता है और छूटनेवाली चीजों का उपयोग करता है उसका जीवन सुखमय हो जाता है ।

किसी रास्ते से गुजरकर आप कहीं जाना चाहते हो तो सड़क बढ़िया हो चाहे घटिया हो, चाहे चढ़ाव आए चाहे उतार आए, आप वहाँ से गुजरकर अपने गन्तव्य स्थान को पहुँच ही जाओगे । चढ़ाव देखकर आप रुक नहीं जाओगे और उतार देखकर बैठ नहीं जाओगे । ऐसे ही जीवन के चाहे किसी भी क्षेत्र में जाओ, चढ़ाव-उतार आयेंगे ही, अनुकूलता-प्रतिकूलता आयेगी ही । संयोग-वियोग भी होता रहेगा । इन सबको गुजरने दो और अपने लक्ष्य की स्मृति बनाये रखो । जिस पत्नी का संयोग हुआ है एक दिन उसका वियोग भी होगा, पुत्र-परिवार का भी वियोग होगा । धन-पद-प्रतिष्ठा, दुःख-सुख सब संयोगजन्य हैं । उनका वियोग अवश्य होगा । इसमें कोई संदेह नहीं है क्योंकि ये सब नश्वर हैं । फिर भी उनके लिये आदमी तड़पता रहता है तो मनुष्य जन्म में जो आत्मज्ञान का अधिकार है वह गँवा देता है ।

शरीर सदा टिकता नहीं है और आत्मा कभी मरता नहीं है । यह है मुख्य विवेक । ऐसा विवेक जिसका जागृत हो गया वह देर- सबेर अमर आत्मा का ज्ञान पा लेगा ।

व्यवहार में आप कुशल रहो । व्यवहार चलाने के लिये रूपये-पैसे की जरूरत पड़ती है । ठीक है, किन्तु अंदर समझ बनाये रखो कि इसमें कोई सार नहीं है । बहुत धन मिल गया तो भी क्या ? पद-प्रतिष्ठा मिल गई फिर क्या ? ये सब अनात्म पदार्थ हैं, उनका संयोग हुआ है तो वियोग भी होगा । इन छूटनेवाले पदार्थों का साथ कब तक टिकेगा ?

नासतो विद्यते भावो
नाभावो विद्यते सतः ।

असत् कभी टिकता नहीं है और सत् का कभी नाश नहीं होता है । उस सत् के साथ मन से संबंध बनाये रखना है ।

रेलवे में मुसाफिरी करते वक्त हमने देखा है कि यात्री जब मिलते हैं तो आपस में बातचीत करते हैं : 'आप कहाँ से आये हो ? कहाँ जाना है ?' फिर एक-दूसरे का स्वभाव मेल खाता है तो दोस्ती जम जाती है । वे साथ में खाते हैं, कुछ खरीदते हैं तो एक-दूसरे को देते हैं । एक-दूसरे का एड्रेस भी लेते हैं और उतरते समय तो बहुत लम्बी-चौड़ी बातचीत करते हैं : 'अच्छा, फिर कभी मिलेंगे, खत लिखेंगे... आयेंगे... जाएँगे...' वह सब स्टेशन से बाहर निकलकर घर पहुँचते ही हवा हो जाता है । रेलवे की दोस्ती वहीं तक सीमित रह जाती है ।

तुम्हारे ये जो श्वासोच्छ्वास चल रहे हैं तो समझो यह आयुष्यरूपी गाड़ी चल रही है । रेलगाड़ी तो कहीं दो मिनट, कहीं पाँच मिनट, कहीं आधा घंटा भी रुकती है पर यह गाड़ी तो चौबीस घंटों चलती ही रहती है । रेलगाड़ी छुक-छुक करती चलती है, यह गाड़ी 'सोऽहं सोऽहं' करती है । रेलगाड़ी में तो आप चाहो

तो बीच के स्टेशन में उतरो चाहे अंतिम स्टेशन पर उतरो मरजी आपकी । इस गाड़ी को तो जहाँ रुके, छोड़ना ही पड़ेगा । ऐसी गाड़ी में साथ में जो स्नेही, सगे-संबंधीरूपी पेसेंजर मिल गये उनके साथ ठीक से संबंध निभा लो लेकिन अंदर से समझ लो कि गाड़ी छूटने तक का खेल है, चाहे उनकी गाड़ी पहले छूटे, चाहे अपनी गाड़ी पहले छूटे । गाड़ी से उतरे कि सब भूल जाना है । केवल अपने घर को याद रखना है ।

आप बस में बैठकर कहीं जा रहे हो । रास्ते में बहुत बढ़िया बंगला दिखे, वह चाहे कितना भी सुंदर हो पर बस में से उतरकर उसमें रहने चले जाते हो क्या ? नहीं । अपना मकान भले किराये का हो, पुराना हो पर उसमें ही जाकर रहोगे क्योंकि वह अपना है जबकि सुंदर दिखनेवाला वह बंगला तो पराया है, देखनेभर को है । उसमें निवास नहीं हो सकता । ठीक ऐसे ही शरीररूपी घर कितना भी सुंदर लगे, सुखदायी लगे पर यह देखनेभर को है, पराया है । इसमें सदा निवास नहीं हो सकता । अपना आत्मारूपी घर ही अपना है, शाश्वत है ।

भगवान की कृपा के बिना सत्संग सुलभ नहीं है । माया की कृपा हो तो आदमी को धन-धान्य मिलता है, प्रजापति की कृपा हो तो पुत्र-परिवार मिलता है । जब प्रभु की कृपा होती है तब सत्संग मिलता है ।

शरीर सदा टिकता नहीं है और आत्मा कभी मरता नहीं है । यह है मुख्य विवेक । ऐसा विवेक जिसका जागृत हो गया वह देर सबेर अमर आत्मा का ज्ञान पा लेगा ।

अविनाशी आतम अमर जग ताते प्रतिकूल ।
ऐसा ज्ञान विवेक है, सब साधन का मूल ॥

आत्मा अविनाशी है, शरीर नाशवान् है । आत्मा सत्-चित्-आनंदस्वरूप है, शरीर असत्, जड़ और दुःखरूप है । आत्मा अजर-अमर है, शरीर परिवर्तनशील और मरणधर्मा है । ऐसा विवेक जिसका पक्का हो गया उसने दुनिया में बहुत कुछ जान लिया । उसने बहुत पढ़ाई पढ़ ली, उसने बहुत परीक्षाएँ पास कर लीं । चाहे वह अनपढ़ हो, अंगूठाछाप हो पर सत्संग सुनते-सुनते उसका विवेक जग जाता है । सुख-दुःख में वह इतना हिलता नहीं है । पढ़े हुए जिंदगी में जितने सुख-दुःख के झोंके खाते हैं उतने झोंके खाने का दुर्भाग्य उसका नहीं होता है । संसार में ही रचा-पचा रहनेवाला आदमी चाहे कितना भी पढ़ा-लिखा हो किन्तु उसके जीवन में सत्संग नहीं है, विवेक नहीं है । आदमी को थोड़ा-सा सुख मिलता है तो अभिमान आ जाता है और थोड़ा-सा दुःख आता है तो परेशान हो जाता है । तो किसकी पढ़ाई सच्ची ? सत्संग में आदमी बिना परिश्रम के ऐसी पढ़ाई पढ़ लेता है कि अनपढ़ होते हुए भी वह पढ़े-लिखे को पढ़ा सकता है । तुलसीदासजी ने कहा है :

बिनु सत्संग विवेक न होई ।
राम कृपा बिनु सुलभ न सोई ॥

भगवान की कृपा के बिना सत्संग सुलभ नहीं है । माया की कृपा हो तो आदमी को धन-धान्य मिलता है, प्रजापति की कृपा हो तो पुत्र-परिवार मिलता है । जब प्रभु की कृपा होती है तब सत्संग मिलता है ।

सत्संग में प्रीति होना बड़े भाग्य की बात है और सत्संग से वंचित होना, सत्संग का त्याग करना महान् पापों का फल है । किसी आदमी में सामान्य विवेक भी नहीं है, वह यदि सत्संग सुनता रहेगा तो उसका सामान्य विवेक जगेगा और प्रीतिपूर्वक, आदरपूर्वक, श्रद्धा से सत्संग का मनन करेगा तो मुख्य विवेक में उसकी गति हो जाएगी । सामान्य विवेक जगने से आदमी के चित्त में धर्म की उत्पत्ति होती है । वह धर्मात्मा बन जाता है । मुख्य विवेक जगता है और वह दृढ़ हो जाता है तो आदमी महात्मा बन जाता है । महात्मा वह है जो अपने शरीर सहित संपूर्ण जगत के पदार्थों को नाशवान समझकर, अविनाशी आत्मा में प्रीतिपूर्वक स्थित हो जाता है । जो अपने-आपको जान लेता है, वही परम विवेकी है । उसने ही जगत में बड़ा काम कर लिया जिसने अपने-आपको जान लिया ।

जहाँ में उसने बड़ी बात कर ली ।
जिसने अपने आपसे मुलाकात कर ली ॥

जो जाने सुख पावे...

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

सुखी सुखी हम सब कहें, सुखमय जानत नाहीं ।
सुख स्वरूप आतम अमर, जो जाने सुख पाहि ॥

आदमी भविष्य में सुख की कल्पना करके जीवन बिताता है । चाहे वर्त्तमान हो चाहे भविष्य हो, कोई दुःखी होना नहीं चाहता है । सभी सदा सुख चाहते हैं लेकिन जहाँ देखो वहाँ सब दुःखी मिलते हैं । कोई तन से दुःखी तो कोई मन से दुःखी, कोई धन के टेन्शन से दुःखी तो कोई निर्धनता से दुःखी, कोई पुत्र-परिवार के लिये दुःखी तो कोई पुत्र-परिवार की परेशानियों से दुःखी । किसी-न-किसी निमित्त से आदमी दुःख बना लेता है ।

> *दुःख नासमझी से पैदा होता है । नासमझी से आदमी के मन में जो कल्पनाएँ उठती हैं उन कल्पनाओं के अनुसार वह कर्म करता रहता है । कर्म का परिणाम अपनी कल्पना से विपरीत आता है तो आदमी दुःखी हो जाता है ।*

दुःख नासमझी से पैदा होता है । नासमझी से आदमी के मन में जो कल्पनाएँ उठती हैं, उन कल्पनाओं के अनुसार वह कर्म करता रहता है । कर्म का परिणाम अपनी कल्पना से विपरीत आता है तो आदमी दुःखी हो जाता है । अपनी कल्पनाओं के अनुसार परिणाम आ जाए तो भी आदमी भीतर से अतृप्त ही रहता है क्योंकि कल्पनाओं से मिला हुआ सुख सदा टिकता नहीं है । जब तक भीतर का रस, सुखस्वरूप आत्मा का रस नहीं मिलता है तब तक सुख पाने के लिये बाहर ही बाहर उलझा रहता है । बाहर के सुख के कितने भी साधन हों पर ठीक समझ नहीं है तो भीतर तृप्ति का अनुभव नहीं होता है ।

'ऐसा करूँ तो सुखी होऊँ... ऐसा हो जाए तो सुखी होऊँ...' ऐसी कल्पनाओं में उलझे बिना 'जो हुआ सो भी ठीक हुआ और जो होगा वह भी ठीक ही होगा...' ऐसा भाव रखकर आप निश्चिन्त रहो । चाहे कुछ भी हो जाए, आप अपने-आप में संतुष्ट रहो और बाहर की परिस्थिति में ऐसी ज्ञानदृष्टि बनाए रखो कि 'सब ब्रह्म में हो रहा है...' तो शीघ्र ही भीतर तृप्ति का अनुभव होगा । दुःख और अशांति आप तक पहुँच नहीं पायेंगे ।

श्रीमद्भगवद्गीता में कहा गया है :

लब्ध्वाज्ञानं परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति ।

'ज्ञान को प्राप्त होकर तत्क्षण भगवत्प्राप्तिरूप परम शान्ति को प्राप्त हो जाता है ।'

ज्ञान से अपने-आप में अपनी पूर्णता का अनुभव होता है, इसलिए तत्क्षण परम शान्ति प्राप्त हो जाती है ।

अपना जीवन पूर्ण है पर जब तक पूर्णता का अनुभव नहीं होता है तब तक परेशानी बनी रहती है । संतों की बात मान भी लो कि तुम पूर्ण हो लेकिन मानने से ज्ञान नहीं होता है । केवल मानने से संशय दब जाता है, निर्मूल नहीं होता है । जानने से ही संशय दूर होता है ।

मेरे हाथ में ये फूल हैं । अब मैं कहता हूँ : 'देख लो, ये पँचमहाभूत हैं ।' तो आप मेरी बात मान तो लेंगे पर मन में प्रश्न उठेगा कि 'पँचमहाभूत कैसे हो सकते हैं ?' मन में संशय बना रहता है । पर अब जान लो :

'ये फूल कहाँ से आये ?'

'पौधे से ।'

'पौधा कहाँ से आया ?'

'पौधा बीज से आया । पौधे ने मिट्टी के कण खाये, पानी भी लिया, धूप और हवा लेकर आकाश में पनपा

तो पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश- इन पँचमहाभूतों में से पौधा तैयार हुआ और उनके सहयोग से ही पौधे पर फूल लगे हैं, वे भी पँचमहाभूत ही हुए ।'

अगर फूल में से जल तत्त्व निकाल लो तो फूल बचेंगे नहीं, सूख जाएँगे, नष्ट हो जाएँगे । फूल की आकृति तो नष्ट होगी लेकिन उसके जो तत्त्व हैं उनका नाश नहीं होगा । वे व्यापक पँचमहाभूतों में मिल जाएँगे ।

इन पँचमहाभूत का कारण है प्रकृति और प्रकृति का आधार है परमात्मा । वही परमात्मा अपना आत्मा बनकर सदा हमारे साथ रहता है । सच पूछो तो हम वही हैं पर अपने-आप को जानते नहीं हैं इसलिए दुःख भोग रहे हैं । जब जान लेंगे तब सुख-दुःख, मान-अपमान, मेरा-तेरा कुछ नहीं बचेगा । केवल वही रहेगा :

चाहे कुछ भी हो जाए, आप अपने-आप में संतुष्ट रहो और बाहर की परिस्थिति में ऐसी ज्ञानदृष्टि बनाए रखो कि 'सब ब्रह्म में हो रहा है...' तो शीघ्र ही भीतर तृप्ति का अनुभव होगा । दुःख और अशांति आप तक पहुँच नहीं पायेंगे ।

सत्यं ज्ञानं अनंतं ब्रह्म...

ज्ञान मान जा को नाहीं ।
देखत ब्रह्म समान सब मांही ॥
कहिए तासु परम वैरागी ।
तृण सम सिद्धि तीन गुण त्यागी ॥

उस सुखस्वरूप आत्मा को जान लेनेवाला परम वैरागी कहलाता है । उसे माया बाँध नहीं सकती है । कैसी भी परिस्थिति आ जाए, उससे वह भयभीत नहीं होता है, दुःखी नहीं होता है । ऐसी निर्दुःख अवस्था को प्राप्त हो जाता है कि जहाँ भय, शोक, चिंता, दुःख, अशांति उसे छू नहीं सकते हैं । श्री भोले बाबा कहते हैं :

निष्क्रिय सदा निस्संग तू
कर्त्ता नहीं भोक्ता नहीं ।
निर्भय निरंजन है अचल
आता नहीं जाता नहीं ॥
मत राग कर मत द्वेष कर
चिन्ता रहित हो जा नीडर ।
आशा किसी की क्यों करे
संतृप्त हो सुख से विचर ॥

अपने इस अचल स्वरूप का विचार करने से उस अचल स्वरूप में स्थिति होने लगेगी और उसका ज्ञान हो जाएगा तब आप परम सुखी हो जाओगे, मुक्त हो जाओगे । उपनिषदों में भी कहा गया है : **ऋते ज्ञानात् न मुक्तिः । ज्ञानात् मुक्तिः ।**

आत्मा के ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं होती । ज्ञान से ही मुक्ति होती है । अतः आत्मज्ञान पाकर सदा के लिये निर्भार, निर्दुःख नारायण में प्रतिष्ठित हो जाओ ।

आप जपे औरों को जपाये ।
वो साधक परमपद पाये ॥

❀

अपना परम लक्ष्य मत चूको

हमारे जीवन में धर्म की हानि कब होती है ? जब हमारी समझ, हमारा ज्ञान कमजोर हो जाता है तब । हमारी वासनाएँ जब जोर पकड़ लेती हैं तब धर्म की हानि होती है । हम लोग कुछ-न-कुछ मानते और जानते हैं । उन माने हुए, जाने हुए विषय में हमारी अडिग श्रद्धा होनी चाहिए, विश्वास होना चाहिए, परन्तु हम अडिग श्रद्धा नहीं कर पाते । क्यों ? क्योंकि मन जब बाह्य सुख का अनुगामी हो जाता है, बाह्य सुख की इच्छा करने लगता है तब माना हुआ, जाना हुआ सब भूल जाता है ।

संतों की बात मान भी लो कि तुम पूर्ण हो लेकिन मानने से ज्ञान नहीं होता है । केवल मानने से संशय दब जाता है, निर्मूल नहीं होता है । जानने से ही संशय दूर होता है ।

हम जानते हैं कि चोरी करना पाप है, शोषण करना

पाप है । दूसरे को दुःख देना मानो अपने लिए दुःख को आमंत्रित करना है । क्या उचित है ? क्या अनुचित है ? यह भी हम जानते हैं । परन्तु मन जब विषयों का सुख लेने के पक्ष में हो जाता है तब हमारी समझ, हमारा ज्ञान ज्यों-का-त्यों धरा रह जाता है ।

इन्द्रियों एवं विषयों के संयोग से जो सुख मिलता है- देखने का सुख, सूँघने का सुख, चखने का सुख, सुनने का सुख, स्पर्श करने का सुख... ये सब क्षणिक सुख हैं, नाशवंत हैं ।

कितना भी बढ़िया सूँघो, चखो, देखो, सुनो, किन्तु यदि मन अशांत है तो बढ़िया खाने से, देखने से, सूँघने से वह अशांति दूर नहीं होती । फिर भी जब हम इन्द्रियों से सुख लेने की लालच में पड़ जाते हैं तब हमारा ज्ञान मन और इन्द्रियों का अनुगामी हो जाता है । जब मन और इन्द्रियाँ मनमाना आचरण करने लगते हैं, विषय-विकार के आधीन हो जाते हैं तब हम अपने लक्ष्य से च्युत हो जाते हैं । किन्तु मनुष्य यदि मन, बुद्धि एवं इन्द्रियों का नियंत्रण करे तो फिर वह अपने परम लक्ष्य परमात्मस्वरूप को सहज में पा सकता है। इसीलिए भगवान श्रीकृष्ण श्रीमद्भगवद्गीता में अर्जुन से कहते हैं :

मन जब विषयों का सुख लेने के पक्ष में हो जाता है तब हमारी समझ, हमारा ज्ञान ज्यों का त्यों धरा रह जाता है ।

'इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि ये काम के वासस्थान कहे जाते हैं और यह काम इन मन, बुद्धि और इन्द्रियों द्वारा ही ज्ञान को आच्छादित करके इस जीवात्मा को मोहित करता है । इसलिए तू पहले इन्द्रियों को वश में करके ज्ञान और विज्ञान को नाश करनेवाले इस पापी काम को निश्चयपूर्वक मार और यदि तू समझे कि इन्द्रियों को रोककर कामरूप वैरी को मारने की मेरी शक्ति नहीं है तो यह तेरी भूल है क्योंकि इस शरीर से इन्द्रियों को परे कहते हैं, इन्द्रियों से परे मन है, मन से परे बुद्धि है और बुद्धि से जो अत्यंत परे है वह आत्मा है । इस प्रकार बुद्धि से परे अर्थात् सूक्ष्म एवं सब प्रकार से बलवान और श्रेष्ठ अपने आत्मा को जानकर, बुद्धि के द्वारा मन को वश में करके, हे महाबाहो ! अपनी शक्ति को समझकर इस दुर्जय कामरूप शत्रु को मार डाल ।'

(पृष्ठ ११ का शेष)

निष्कर्ष निकाला कि मनुष्य की सारी उद्विग्नता, समस्त विक्षिप्तता का कारण निन्यानवे प्रतिशत (९९ %) कामवासना है । उसका निदान कुछ अंश में सही हो सकता है लेकिन जो उपचार वह बताता है वह भ्रामक है... पूर्णतः गलत है । वह कहता है : "समस्याओं की जड़ कामवासना है । उसकी परितृप्ति न हो तो आदमी विक्षिप्त होता चला जायेगा ।" लेकिन उसका यह प्रतिपादन इसीलिये गलत है कि कामवासना की तृप्ति कभी भी सम्भव नहीं है । कामवासना को रूपान्तरित किये बिना तृप्ति एवं संतोष की उपलब्धि नहीं हो सकती । प्रमाण एवं उदारण सामने हैं । फ्रायड़ के विचारों से पनपे स्वच्छन्दवाद ने यौनाचार की खुली छूट पश्चिमी जगत को दे दी लेकिन कामतृप्ति न हो सकी । सभी तरह के बन्धनों से मुक्त, सामाजिक मर्यादाओं से मुक्त रहनेवाली परमीसिव सोसायटी (Permissive Society) का जन्म हुआ । स्वच्छन्दता के प्रयोग तो चले पर असफलता ही हाथ लगी । मानसिक रोगी और बढ़े, पशुता की वृद्धि के कारण बलात्कार के किस्से बढ़े, एड्स जैसी प्राणघातक बीमारियाँ फैलीं और कौटुम्बिक, सामाजिक जीवन भ्रष्ट हो गया ।

(क्रमशः)

आपके निर्माण किये हुए श्वेत ऊँचे-ऊँचे मन्दिर और उनमें स्थापित पत्थर के विष्णु आपके हृदय के पाप को शांत नहीं करेंगे । पूजो, देश के इन भूखे दरिद्र-नारायणों और परिश्रम करनेवाले काले विष्णुओं को पूजो । - स्वामी रामतीर्थ

मनोनिग्रह की महिमा

एक मनोवैज्ञानिक मीमांसा

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

(गतांक का शेष)

स्वामी माधवतीर्थ ने ठीक ही कहा है : ''यदि ज्ञान के मुताबिक जीवन न बनाओगे तो जीवन के मुताबिक ज्ञान हो जायेगा ।''

भारत के आर्षदृष्टा ऋषियों के संयम के ज्ञान के मुताबिक पश्चिमी लोगों ने अपना जीवन नहीं बनाया तो उनके पाशवी जीवन के मुताबिक उनका ज्ञान हो गया ।

अपने जीवन की संस्कार-जन्य कमजोरी के कारण लगता है कि फ्रायड़ ने कामसुख को ही एक सर्वसाधारण सिद्धान्त मान लिया और उसे ही सत्य सिद्ध करने में जीवनभर लगा रहा । जिन लोगों के जीवन में आर्यों के संस्कार हैं उनकी मनःस्थिति का अध्ययन फ्रायड़ ने नहीं किया ।

मनुष्य जीवन की साधारण गति अधोमुखी होती ही है, अतः फ्रायड़ को समर्थक मिलते गये (जो मनोवैज्ञानिक संमति के द्वारा मुक्त जातीय सुख पाने को लालायित रहे होंगे) और देखते-देखते फ्रायड़ के सेक्सवाद ने सारे पश्चिमी समाज को अपनी जाल में फाँस लिया ।

मनुष्य जीवन की साधारण गति अधोमुखी होती ही है, अतः फ्रायड़ को समर्थक मिलते गये (जो मनोवैज्ञानिक संमति के द्वारा मुक्त जातीय सुख पाने को लालायित रहे होंगे) और देखते-देखते फ्रायड़ के सेक्सवाद ने सारे पश्चिमी समाज को अपनी जाल में फाँस लिया ।

भारत में पूर्वजन्म के योगी, उच्च कोटि के भक्त और कई संस्कारसम्पन्न जनसाधारण भी मन और इन्द्रियों को संयत करने में सफल होते हैं, क्योंकि भारतीय योग-विज्ञान का उनको आधार मिलता है । भीष्म पितामह और वीर हनुमान जैसे आजीवन ब्रह्मचर्य का पालन करनेवाले महापुरुष इस देश में पैदा हुए हैं । नेपोलियन २५ वर्ष की आयु तक कामसुख तो क्या, किसी नारी के प्रति आकृष्ट भी नहीं हुआ था । न्यूटन के मस्तिष्क में यौनाकर्षण उठा होता तो उसने अपने बुद्धि-कौशल को सृष्टि के रहस्य जानने की अपेक्षा अपरिमित कामसुख प्राप्त करने में झोंक दिया होता । न्यूटन आजीवन अपरिणीत रहा था । इससे सिद्ध होता है कि जन्मजात प्रतिभाएँ अधोमुखी नहीं, ऊर्ध्वमुखी होती रहती हैं और उनसे कामसुख की अपेक्षा अधिक ऊँचा शुद्ध सुख लोगों को मिलता रहा है । हमारे देश में तो सच्चे और शाश्वत सुख की प्राप्ति में कामवासना को प्रधान बाधा माना गया है । रामकृष्ण परमहंस विवाहित होकर भी योगियों की तरह रहे । वे पत्नी के साथ रहते हुए भी कभी कामवासना से पीड़ित न होकर सदैव आनन्दमग्न रहते थे । स्वामी रामतीर्थ और भगवान बुद्ध ने तो आत्मसुख के लिये तरुणी पत्नियों का परित्याग कर दिया था । महर्षि दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द आदि ब्रह्मचारी होकर जिये । महात्मा गाँधी ने ३६ वर्ष की अवस्था के बाद कामवासना को बिल्कुल नियंत्रित कर दिया था ।

काश ! फ्रायड़ ने ऐसे महापुरुषों के मन का भी विश्लेषण किया होता तो उसे सत्य समझने में देर न लगती । लेकिन फ्रायड़ नास्तिक था, कट्टर भोगवादी था इसलिये उसने इस ओर ध्यान ही नहीं दिया ।

सिग्मंड फ्रायड़ ने हिस्टीरिया और कुछ मानसिक रोगियों का मनोविश्लेषण किया । फ्रायड़ ने उससे

(शेष पृष्ठ १० पर)

आत्मज्ञान की महिमा

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

आत्मज्ञान की बड़ी महिमा है । एक व्यक्ति को दुनियाभर का धन दे दो, दुनियाभर का सौन्दर्य दे दो लेकिन आत्मज्ञान से अगर वंचित रखा तो वह अभागा रह जायेगा । उसके हृदय में अशांति जरूर रहेगी, खटकाव जरूर रहेगा और जन्म-मरण का चक्र उसके सिर पर मँडराता ही रहेगा । फिर किसी-न-किसी माता के गर्भ में उलटा लटकता ही रहेगा । यदि उसे आप और कुछ भी न दो, परन्तु किसी संत का सत्संग दिला दो, किसी ब्रह्मज्ञानी गुरु की मधुर निगाहों की माधुर्यता की एक झलक दिला दो, उसकी रुचि ईश्वराभिमुख कर दो तो महाराज ! आपने उसे ऐसा दे डाला, ऐसा दे डाला कि जो हजारों जन्मों के माँ-बाप तक न दे सकें । हजारों-हजारों जन्मों के दोस्त, रिश्ते-नाते न दे सकें , ऐसी चीज आपने उसको हँसते-हँसते दिला दी । आप उसके परम हितैषी हो गये ।

आत्मज्ञान की ऐसी महिमा है । भगवान श्रीकृष्ण युद्ध के मैदान में मुस्कुराते हुए अर्जुन को आत्मज्ञान दे रहे हैं । श्रीकृष्ण आये हैं तो कैसे ? विषम परिस्थितियों में आये हैं । गीता का भगवान कैसा अनूठा है ! किसीका भगवान सातवें अर्स पर होता है, किसीका खुदा कहीं होता है, किसीका भगवान कहीं होता है लेकिन भारत का भगवान ! जीव को रथ पर बिठाता है और खुद सारथि होकर, छोटा होकर भी जीव को ब्रह्म का साक्षात्कार कराने में संकोच नहीं करता । श्रीकृष्ण तो यह भी नहीं कहते कि 'इतना नियम करो, इतना व्रत करो, इतना तप करो, फिर मैं मिलूँगा ।' नहीं । वे तो कहते हैं :

अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः ।
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं संतरिष्यसि ॥

'यदि तू सब पापियों से भी अधिक पाप करनेवाला है तो भी ज्ञानरूप नौका द्वारा निःसन्देह संपूर्ण पापों को अच्छी प्रकार तर जाएगा ।' (गीता : ४.३६)

भगवान कहते हैं 'पापकृत्तमः ।' जैसे प्रिय, प्रियतर, प्रियतम होता है ऐसे ही कृत, कृत्तर और कृत्तम अर्थात् पापियों में भी आखिरी पंक्ति का हो, वह भी यदि इस ब्रह्मज्ञान की, आत्मज्ञान की नाव में बैठेगा तो तर जायेगा ।

भगवद्गीता जिस देश में हो, उस देश के वासी जरा-जरा-सी बात में चिढ़ जायें, दुःखी हो जायें, भयभीत हो जायें, ईर्ष्या करने लगें तो यह गीता से विमुखता के ही दर्शन हो रहे हैं । यदि हम गीता के ज्ञान के सन्मुख हो जायें तो हमारा यह दुर्भाग्य नहीं रह सकता ।

> *गीता का भगवान कैसा अनूठा है ! किसीका भगवान सातवें अर्स पर होता है, किसीका खुदा कहीं होता है, किसीका भगवान कहीं होता है लेकिन हिंदुओं के भगवान जीव को रथ पर बैठाते हैं और खुद सारथि होकर, छोटे होकर भी जीव को ब्रह्म का साक्षात्कार कराने में संकोच नहीं करते ।*

जरा-जरा-सी बात में जर्मन टॉय जैसा बन जाना, कोई दो शब्द बोल जाये तो आगबबूला हो जाना अथवा किसीने जरा-सी बड़ाई कर दी, दो शब्द मीठे कह दिये तो फूल जाना, इतना तो लालिया, मोतिया और कालिया कुत्ता भी जानता है । जलेबी देखकर पूँछ हिलाना और डण्डा देखकर दुम दबा देना, इतनी अक्ल तो उसके पास भी है । अगर इतना ही ज्ञान अपने पास है तो इतनी पढ़ाई-लिखाई का फल क्या ? मनुष्य होने का फल क्या ? फिर तो हम लोग भी द्विपाद पशु हो गये ।

भगवान कहते हैं कि तुम कितने भी ठगे गये हो लेकिन अब गीता की शरण आ जाओ । अभी-अभी तुमको हम राजमार्ग दिखा देते हैं । जैसे हवाईजहाज छः घण्टों में दरिया-पार पहुँचा देता है किन्तु बैलगाड़ीवाला छः साल चलता रहे फिर भी दरिया-पार करना उसके लिए संभव नहीं । मनमानी सुख की बैलगाड़ी को छोड़कर अब तुम आत्म-परमात्मसुख के जहाज में बैठ जाओ तो भवसागर से भी तर जाओगे ।

> *जगत के और ज्ञान, छोटे-मोटे ज्ञान तो ज्ञानड़ी हैं लेकिन ब्रह्मज्ञान तोप का गोला है, जो सारी मुसीबतों को मार भगाता है ।*

ज्ञान मिड़ई ज्ञानड़ी ज्ञान तो ब्रह्मज्ञान ।
जैसे गोला तोप का सोलह सो मैदान ॥

जगत के और ज्ञान, छोटे-मोटे ज्ञान तो ज्ञानड़ी हैं लेकिन ब्रह्मज्ञान तोप का गोला है, जो सारी मुसीबतों को मार भगाता है । उस ज्ञान को पाने का तरीका भी भगवान सहज, सरल बता रहे हैं और वह तुम कर सकते हो । उसमें जो अड़चनें आती हैं उनका कारण भी भगवान बता रहे हैं और उन अड़चनों को कुचलने का उपाय भी भगवान बता रहे हैं । केवल तुमको यह गाँठ बाँधनी है कि 'ईश्वरप्राप्ति करके ही रहेंगे । हमको इस संसारभट्ठी में पच-पचकर नहीं मरना है बल्कि हमको शहंशाह होकर जीना है और शहंशाह होकर ही परम शहंशाह से मिलना है ।'

राजा से मिलने जब जाते हैं तो भीखमंगों के कपड़े पहनकर नहीं जाते । किसी मिनिस्टर, कलेक्टर से मिलने जब व्यक्ति जाता है तो उस दिन कपड़े जरा ठीकठाक करके जाता है । जब मिनिस्टर, चीफ मिनिस्टर से मिलना है तो सज-धजकर जाते हैं तो उस ब्रह्मांडनायक परमेश्वर से मिलना हो तो शहंशाह होकर जाओ । दीनता, हीनता, वासना, चिंता, मुसीबतें, काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, मात्सर्य, यह कचरा लेकर कहाँ मुलाकात करने जाते हो ? इन विकारों से बचने का उपाय, संसार में सुगमता से स्वर्गीय जीवन जीने का उपाय और परम सुखस्वरूप उस परमेश्वर को पाने का उपाय, ये सब बातें श्रीमद्भागवत में व भगवद्गीता में बतायी गयी हैं । कोई भी व्यक्ति गीता के अध्ययन, मनन और निदिध्यासन से अपने जीवन-पुष्प को महका सकता है ।

(पृष्ठ २५ का शेष)

हूँ क्योंकि वह स्त्री जैसा बोलती है वैसा ही मैं करता रहता हूँ ।''

तब साधु को पता चला कि पुरुष को सचमुच में बंदर-तोता नहीं बनाया जाता, लुभावनी बातें करके अहंकार का कचरा ऐसा भर दिया जाता है कि पुरुष स्वयं ही सम्मोहित हो जाता है । सच में पंखवाला तोता या पूँछवाला बंदर नहीं बनाते किन्तु संस्कार-विचार ऐसे भर दिये जाते हैं कि पुरुष अपना पौरुष खोकर स्त्रियों की आज्ञा का पालन करने लगते हैं ।

भगवान कहते हैं : 'तुम इन्सान या मनुष्य नहीं, तुम तो हो ब्रह्मस्वरूप, परमात्मस्वरूप लेकिन माया के, मन के, इन्द्रियों के संस्कारों ने तुम्हें अपना ब्रह्मस्वरूप भुलाकर माया के इशारों पर विलास में नाचनेवाला बना दिया ।'

तुम्हारे ऊपर सिंधी, गुजराती, मराठी होने का अहंकार थोप दिया है और तुम ईश्वर की शरण न होकर माया की शरण होने के कारण अपने अहंकार का पोषण करके चौरासी के चक्कर खा रहे हो । इससे छूटने का उपाय बतलाते हुए भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं :

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

'सम्पूर्ण धर्मों का आश्रय छोड़कर तू केवल मेरी शरण में आ जा । मैं तुझे सम्पूर्ण पापों से मुक्त कर दूँगा । तू शोक मत कर ।' (गीता : १८.६६)

प्रत्येक मनुष्य को दुःख, चिंता, निराशा को त्यागकर परमात्मा की, सद्गुरु की शरण जाकर, अहं को त्यागकर, माया के बंधनों को तोड़कर उस चिद्घन सच्चिदानंद, आनंदघन परमात्मा के ध्यान में गोता लगाना चाहिए । अपने-आपको गुरुकृपा के द्वारा मुक्ति के रास्ते ले जाना चाहिए । 'मैं' और 'मेरा' मिटाकर उस चिद्घन नारायण का ध्यान करना चाहिए । उसकी स्मृति से ही अपने-आपको सराबोर रखना चाहिए । ॐ ॐ ॐ

दीक्षा से दिशा

शिवाजी जयंती ८ मई ९७ पर विशेष

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

धर्म मनुष्य को जीवन जीने की सही दिशा देता है । धर्म की व्याख्या स्वामी विवेकानंद ने बहुत ही सुन्दर तरीके से की है । वे कहते हैं : 'धर्म अनुभूति की वस्तु है । मुख की बात, मतवाद अथवा युक्तिमूलक कल्पना नहीं है, चाहे वह कितनी ही सुन्दर हो । आत्मा की ब्रह्मस्वरूपता को जान लेना, तद्रूप हो जाना, उसका साक्षात्कार करना- यही धर्म है । धर्म केवल सुनने या मान लेने की चीज नहीं है । समस्त मन-प्राण विश्वास के साथ एक हो जायें- यही धर्म है ।'

> *धर्म पर चलने से कष्ट हो तो भी अधर्म का आचरण नहीं करना चाहिये, क्योंकि धर्मदेवता साक्षात् भगवान के स्वरूप हैं । वे ही सब प्राणियों की गति हैं ।*

सीदन्नपि हि धर्मेण न त्वधर्मं समाचरेत् ।
धर्मो हि भगवान् देवो गतिः सर्वेषु जन्तुषु ॥

'धर्म पर चलने से कष्ट हो, तो भी अधर्म का आचरण नहीं करना चाहिये, क्योंकि धर्मदेवता साक्षात् भगवान के स्वरूप हैं । वे ही सब प्राणियों की गति हैं ।'

लेकिन आज कल धर्म के नाम पर लोगों को भड़काया जाता है, फिर दूसरों को सताया जाता है, दूसरों का शोषण किया जाता है या लालच देकर उन्हें पथभ्रष्ट किया जाता है । यह धर्म नहीं है । सच्चा धर्म है अपने आपको सबमें बसे हुए उस एक-के-एक अन्तर्यामी परमात्मा के करीब लाना और उसका ज्ञान पाना ।

शिक्षित आदमी के जीवन में यदि धर्म का प्रभाव है तो उसके जीवन की दिशा सही होगी तथा वह महान् से महान् कार्यों का सम्पादन भी कर सकेगा । श्रीरामकृष्णदेव, कबीर, तुकाराम, मीरा, वल्लभाचार्य, रमण महर्षि, लीलाशाहजी महाराज जैसे अनेक महापुरुष हो गये, जिनके जीवन में ऐहिक शिक्षा तो नहीं के बराबर थी लेकिन ज्ञान के प्रभाव से उनके जीवन की दिशा ऐसी थी कि उनके द्वारा समाज का परम कल्याण हुआ है और आज भी लाखों-लाखों लोग उनके ज्ञान-प्रसाद से लाभान्वित हो रहे हैं, आत्मा-परमात्मा के आनन्द से आनंदित हो रहे हैं और परम कल्याण के मार्ग पर आगे बढ़ रहे हैं ।

जिसके जीवन की दिशा सही है, वह चाहे ऐहिक दृष्टि से अधिक पढ़ा-लिखा हो कि न हो, उसके पास सुख-सुविधाएँ अधिक हों या कम हों, उसकी वह परवाह नहीं करता है । वह बाहर के सुख-सुविधा की अपेक्षा अपने भीतर की शांति, तृप्ति पाता है । उसका जीवन अपने तथा दूसरों के लिये मंगलकारी हो जाता है ।

राज्यसत्ता के मार्ग पर चलनेवालों के लिये छत्रपति शिवाजी महाराज का जीवन अनुकरणीय है । समर्थ गुरु स्वामी रामदासजी के मार्गदर्शन से उनके जीवन को सही दिशा मिली थी ।

शिवाजी जब समर्थ रामदास के पास संन्यास की दीक्षा लेने गये तब समर्थ रामदास ने कहा : ''मैं तुम्हें संन्यास की दीक्षा नहीं दूँगा । इस समय देश को तुझ जैसे वीर पुरुषों की जरूरत है ।''

दीक्षा के दिन समर्थ रामदास ने शिवाजी महाराज को तीन वस्तुएँ प्रसाद के रूप में दीं : पहले खोबा

भरकर मिटट्री दी, फिर खोबा भरकर घोड़ों की लीद दी और अन्त में नारियल दिया ।

गुरु जब प्रसाद देते हैं तो प्रसाद में गुरु का संकल्प होता है, गुरु के हृदय का भाव होता है । सत्‌शिष्य उसे झेल ले तो उसका जीवन सफल हो जाता है ।

शिवाजी महाराज दीक्षित होकर जीजामाता के पास गये और गुरुजी के दिये हुए प्रसाद के बारे में पूछा : ''माँ ! मुझे कुछ समझ में नहीं आता है कि गुरुजी ने प्रसादरूप में ये सब क्या दिया, क्यों दिया ?''

माँ कहती हैं : ''शिवा ! तुझे मिट्टी इसलिये दी है कि तू महीपति होगा । घोड़ों की लीद इसलिये दी है कि तेरे अस्तबल में घोड़े होंगे और युद्ध के समय में या जब कभी तुझ पर संकट आ जाय तो गुरुकृपा घोड़े द्वारा तेरी रक्षा करेगी । यह लीद नहीं है बेटा ! यह तो गुरुदेव के रहस्यमय आशीर्वाद हैं । नारियल इसलिये दिया है कि तेरे भीतर अहंकार न उभर पाए । भीतर से तेरी सम्पूर्ण रक्षा तेरे गुरुदेव करेंगे । इतना ही नहीं, तेरा अहंकार मिटाने की जवाबदारी भी उन्होंने अपने सिर ले ली है । शिवा ! भोग और मोक्ष, दोनों ही तेरे हाथ में हैं । आज तुझे महादीक्षा मिल गई है ।

जिसके जीवन की दिशा सही है वह चाहे ऐहिक दृष्टि से अधिक पढ़ा-लिखा हो कि न हो, उसके पास सुख-सुविधाएँ अधिक हों या कम हों, उसकी वह परवाह नहीं करता है । वह बाहर के सुख-सुविधा की अपेक्षा अपने भीतर की शांति, तृप्ति पाता है । उसका जीवन अपने तथा दूसरों के लिये मंगलकारी हो जाता है ।

ऐसे समर्थ महापुरुषों द्वारा जब दीक्षा मिल जाती है तो उनके द्वारा अच्छे काम, दूसरों की भलाई के काम सहज में हो जाते हैं । फिर चाहे वह दुकान चलाता हो, चाहे राज्य करता हो, चाहे छोटे-बड़े जो भी काम करता हो, क्योंकि उसके जीवन में महापुरुषों के ज्ञान का प्रभाव होता है, उनकी दुआ का प्रभाव होता है ।

गुरु जब प्रसाद देते हैं तो प्रसाद में गुरु का संकल्प होता है, गुरु के हृदय का भाव होता है । सत्‌शिष्य उसे झेल ले तो उसका जीवन सफल हो जाता है ।

ब्रह्मज्ञानी ते कछु बुरा न भया ।

ब्रह्मज्ञानी से किसीका कुछ भी बुरा नहीं होता है और ऐसे ब्रह्मवेत्ताओं के सच्चे शिष्यों से भी समाज का बुरा नहीं होता है क्योंकि ब्रह्मवेत्ताओं का 'बहुजन-हिताय बहुजनसुखाय प्रवृत्ति' का स्वभाव उनके शिष्यों में भी अनायास ही आ जाता है ।

शिवाजी ऐसे महापुरुष द्वारा दीक्षित हुए थे और उनके जीवन की दिशा भी सही थी । एक बार युद्ध में उनकी सेना से परास्त किसी मुगल सरदार की सुन्दर स्त्री को शिवाजी के सिपाही पकड़ लाये और दरबार में पेश करते हुए उन्होंने सोचा कि महाराज खुश होंगे लेकिन शिवाजी उस स्त्री से कहते हैं : ''यदि मेरा दोबारा जन्म हो तो मैं प्रभु से प्रार्थना करता हूँ कि मैं ऐसी सुन्दर माता की कोख से जन्म लूँ ।''

सैनिकों ने उस मुगल युवती को भोग्या बनाने के लिये शिवाजी के सम्मुख प्रस्तुत किया था लेकिन भारत का यह वीर उसे मातृदृष्टि से निहारता हुआ सम्मानपूर्वक उसे उसके पति के पास लौटा देता है । क्या मुगल सम्राटों के इतिहास में ऐसा देखने को मिलेगा ?

जिनके जीवन की दिशा सही होती है वे राजसत्ता में भी धर्म को आगे रखकर निर्णय लेते हैं, इसीलिये उनका जीवन दूसरों के लिये आदर्श बन जाता है, प्रेरणादायी बन जाता है ।

शिवाजी मातृभूमि की रक्षा के लिये प्राणों की बाजी लगाकर जूझ रहे थे तो कई लोग उनके विरोधी भी थे, जो अपने ऐशो-आराम तथा वैभव-विलास के लिये वतन को बेच डालना चाहते

थे । ऐसे वतन-विरोधियों ने एक मजबूर लड़के की मजबूरी का लाभ उठाकर उसके द्वारा शिवाजी की हत्या करवाने का षड़यंत्र रचा । शिवाजी एक रात अपने शयन-खंड में सो रहे थे तब मालवजी नामक एक चौदह वर्षीय बालक अपने को छुपाता हुआ, संभालता हुआ, किसी तांत्रिक विद्या के सहारे शिवाजी के शयनखंड में पहुँच गया ।

शिवाजी के सेनापति तानाजी ने उसे देख लिया था । तानाजी जानना चाहते थे कि वह क्या करने आया है । वे सतर्क थे, एकदम सावधान थे । वे भी छुपकर उसके पीछे-पीछे पहुँच गये । जैसे ही मालवजी ने म्यान से तलवार खींची और शिवाजी की गर्दन को धड़ से अलग करना चाहा कि पीछे से तानाजी ने उस बालक को दबोच लिया । शोरगुल सुनकर शिवाजी की नींद खुल गई ।

किसी मुगल सरदार की सुन्दर स्त्री को शिवाजी के सिपाही पकड़ लाये लेकिन शिवाजी उस स्त्री से कहत हैं : "यदि मेरा दोबारा जन्म हो तो मैं प्रभु से प्रार्थना करता हूँ कि मैं ऐसी सुन्दर माता की कोख से जन्म लूँ ।"

तानाजी कहते हैं :

"महाराज ! इसे मृत्युदंड देना चाहिये । यह आपकी हत्या करने के लिये आया था ।"

शिवाजी उस बालक से पूछते हैं : "भाई ! मैंने तेरा क्या बिगाड़ा है ? तू क्यों मुझे मारने आया है ?"

मालवजी : "मेरी माँ बीमार है और मेरे पिता बचपन में ही मुझे बेसहारा छोड़कर राज्य की रक्षा के लिये युद्ध के मैदान में अपनी प्राणाहुति दे गये । इसी कारण परिवार की स्थिति अत्यधिक दयनीय हो गई । माँ के इलाज के लिये मेरे पास एक भी पैसा नहीं है । आपके विरोधियों ने मुझसे कहा कि 'यदि तू शिवाजी की हत्या कर देगा तो हम तुझे बहुत सारा धन ईनाम में देंगे' और इसी लोभवश मैं आपकी हत्या करने आया था, लेकिन दुर्भाग्य कि मैं पकड़ा गया ।"

"आप मुझे मृत्युदंड दीजिये, उसके लिये मैं सहर्ष तैयार हूँ लेकिन मुझे एक रात की मोहलत दीजिये । मरने से पहले मैं अपनी माँ के पास जाकर उसे सान्त्वना के दो वचन सुनाना चाहता हूँ ।"

तानाजी आवेश में आकर तलवार खींचते हुए कहते हैं : "लेकिन नादान ! तू अब मेरी तलवार से नहीं बच सकता ।"

मालवजी : "आप मुझे मृत्युदंड दीजिये, उसके लिये मैं सहर्ष तैयार हूँ लेकिन मुझे एक रात की मोहलत दीजिये । मरने से पहले में अपनी माँ के पास जाकर उसे सान्त्वना के दो वचन सुनाना चाहता हूँ । मैं वचन देता हूँ कि सुबह तक मैं वापस लौट आऊँगा ।"

उस बालक मालवजी की निर्भीकतापूर्वक कही गई बातों को सुनकर शिवाजी महाराज कहते हैं : "ताना ! यह अपनी माँ के लिये छुट्टी माँग रहा है तो इसे छोड़ दे । इसके बोलने में भी कुछ सच्चाई नजर आ रही है ।"

मालवजी को आजाद करते हुए शिवाजी कहते हैं : "जा ! अपनी माँ की सेवा करके, उससे आशीर्वाद लेकर सुबह आ जाना ।"

प्रातःकाल का समय है । शिवाजी महाराज अपने दरबार में बैठे हैं तभी द्वारपाल के पास आकर एक बालक कहता है : "शिवाजी से कह दो कि मालवजी आया है ।" द्वारपाल का संदेश सुनकर शिवाजी के आश्चर्य का ठिकाना न रहा । उन्होंने उसे भीतर बुलवाया । दरबार में उपस्थित होकर मालवजी कहता है :

"महाराज ! अपने अपराध की सजा पाने को मैं आ गया हूँ । मैं अपनी माँ को सान्त्वना देकर आया हूँ कि मेरे जैसे बेटे तो कई बार आये होंगे । मैं देर-सबेर आऊँ, न भी आऊँ तो तू मेरी चिंता मत करना बल्कि ईश्वर के चिंतन में ही मन

(शेष पृष्ठ २२ पर)

मुंज की दृढ़ गुरुभक्ति

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

चाहे जीवन में कितनी भी विघ्न-बाधाएँ आयें और चाहे कितने भी प्रलोभन आयें किन्तु उनसे प्रभावित न होकर भी जो शिष्य गुरुसेवा में जुटा रहता है, वह गुरु का कृपापात्र बन पाता है। अनेक विषम कसौटियों में भी जिसकी गुरुभक्ति विचलित नहीं होती उसका ही जीवन धन्य है।

चाहे जीवन में कितनी भी विघ्न-बाधाएँ आयें और चाहे कितने भी प्रलोभन आयें किन्तु उनसे प्रभावित न होकर भी जो शिष्य गुरुसेवा में जुटा रहता है, वह गुरु का कृपापात्र बन पाता है।

गुरु गोविन्दसिंह के पास मुंज नामक एक जमींदार आया और बोला :

''कृपा करके मुझे शिष्य बना लीजिए ?''

गुरु गोविन्दसिंह : ''तुम किसको मानते हो ?''

मुंज : ''अमुक कुलदेवी को। हमारे घर पर उनका मंदिर भी है।''

गुरु गोविन्दसिंह : ''जाओ, उस कुलदेवी को प्रणाम करके छुट्टी दे दो। घर का मंदिर उखाड़ फेंको।''

मुंज : ''जी, जो आज्ञा।''

मंदिर तोड़ देना कोई मजाक की बात नहीं है। किन्तु जमींदार की श्रद्धा थी। 'गुरु की कृपा से कर रहा हूँ... कोई बात नहीं' - यह भाव था अतः उसने मंदिर तुड़वा दिया। मंदिर तुड़वाने से समाज के लोगों ने उसका बहिष्कार कर दिया और उसकी खूब निंदा करने लगे।

इधर जमींदार पहुँच गया गुरु गोविन्दसिंह के चरणों में। जमींदार की योग्यता को देखकर गुरु गोविन्दसिंह ने उसे दीक्षा दे दी एवं साधना की विधि भी बतला दी।

अब वह जमींदार इधर-उधर के रीति-रिवाजों में व्यर्थ समय नष्ट न करते हुए गुरुमंत्र का जप करने लगा, ध्यान करने लगा। उसका पूरा रहन-सहन बदल गया। खेती-बाड़ी में ध्यान कम देने लगा। समाज के लोगों द्वारा अब ज्यादा विरोध होने लगा और सभी लेनदारों ने उससे एक साथ पैसे माँगे। जमींदार मुंज ने अपनी जमीन गिरवी रखकर सबके पैसे चुका दिये और स्वयं किसीके खेत में मजदूरी करने लगा।

उस समय जो जमीन गिरवी रख देता था उस किसान का ऊपर उठना लगभग असंभव-सा था क्योंकि ब्याज की दर बहुत ज्यादा थी। एक समय का जमींदार मुंज आज स्वयं एक मजदूर के रूप में काम करने लगा फिर भी गुरु गोविन्दसिंह के श्रीचरणों में उसकी प्रीति कम न हुई।

गुरु गोविन्दसिंह ने जाँच करवाई तो पत्ता चला कि पूरे समाज से वह अलग हो गया है, समाज ने उसका बहिष्कार कर दिया है फिर भी उसकी श्रद्धा नहीं टूटी है। यह जानकर वे बहुत प्रसन्न हुए। समाज से बहिष्कृत मुंज ने गुरु के हृदय में स्थान बना लिया।

कुछ समय पश्चात् गुरु ने पुनः जाँच करवाई तो पता चला कि उसकी आय ऐसी है कि कमाये तो खाये और न कमाये तो भूखा रहना पड़े।

गुरु ने मुंज को चिट्ठी लिखकर भेजी कि इतने पैसे चाहिए।

गुरु को कहाँ पैसे चाहिए ? किन्तु शिष्य की श्रद्धा को परखने एवं उसकी योग्यता को बढ़ाने के लिए ही गुरु कसौटी करते हैं। सच ही तो है कि

कंचन को भी कसौटी पर खरा उतरने के लिए कई बार अग्नि में तपना पड़ता है ।

गुरु की चिट्ठी पाकर मुंज ने पत्नी से कहा : ''पैसे चाहिए ।''

पत्नी बोली : ''नाथ ! मेरे सुहाग की दो चूड़ियाँ हैं और जेवर हैं । उन्हें बेच दीजिए और गुरुदेव को पैसे भेज दीजिए ।''

मुंज ने सब बेच डाला फिर भी दो-चार आने कम पड़े । अब क्या करें ?

पत्नी ने कहा : ''मैं बाल काट देती हूँ उसे बेचकर दो-चार आने की कमी पूरी कर लीजिए ।''

सुहाग की चूड़ियाँ तो बेच दीं किन्तु अब अपने बाल तक बेचने को तैयार हो गयी ! कैसी है भारत की नारी ! पति की श्रद्धा तो है गुरु में, किन्तु पत्नी भी कुछ कम नहीं । अपने स्वामी के प्रत्येक कार्य में सहयोग देने के लिए अपने तन की भी परवाह कहाँ ? धन्य है आर्यनारी !

पत्नी ने मुण्डन करवा दिया और जमींदार ने उसके बाल बेचकर पूरे पैसे गुरु के पास भिजवा दिये । गुरुदेव ने देखा कि अभी भी श्रद्धा नहीं डगमगाई ! गुरुदेव ने कुछ समय के बाद दूसरी चिट्ठी लिखी : ''हजार रूपये चाहिए ।''

उस जमाने के हजार रूपये आज के एक लाख से कम नहीं हो सकते । अब हजार रूपये कहाँ से लाना ? घर में तो फूटी कौड़ी भी न थी ।

उस समय जातिवाद का बोलबाला था । छोटी जाति के लोग स्वप्न में भी कल्पना नहीं कर सकते थे कि इनके बेटे से हमारी बेटी की शादी होगी । मुंज ने प्रस्ताव रखा : ''यदि आप लोग सोचते हैं कि हमारा खानदान ऊँचा है और आप छोटे हैं फिर भी आप यदि चाहें तो मैं अपने बेटे की सगाई आपकी बेटी से कर सकता हूँ । मुझे दहेज में केवल एक हजार रूपये चाहिए और कुछ भी नहीं ।''

मुंज ने हजार रूपये में बेटे तक को बेच दिया । एक छोटे खानदान की लड़की से बेटे की शादी करने में छोटी जाति का, छोटे विचार के लोगों का, किसीका भी ख्याल नहीं किया । धन्य है उसकी गुरुनिष्ठा !

गुरु ने देखा कि अभी-भी इसकी श्रद्धा नहीं टूटी । गुरु ने संदेश भेजा :

''इधर आकर आश्रम का रसोईघर संभालो । रसोईघर में काम करो एवं लोगों को भोजन बनाकर खिलाओ ।''

मुंज गुरुआज्ञा शिरोधार्य करके रसोईघर में काम करने लगा । कुछ समय के बाद गुरु ने पूछा :

''रसोईघर तो संभालते हो किन्तु तुम खाना कहाँ खाते हो ?''

मुंज : ''गुरुदेव ! भण्डारे में सबको जीमाकर फिर मैं भोजन पा लेता हूँ ।''

गुरु क्रोधित हो गये : ''तू सेवा करने आया है या गुरु का अन्न हड़प करने के लिए आया है ? इधर रसोई बनाकर सबको खिला दे । फिर अपनी लकड़ी काट ले । लकड़ी बेचकर घर में भोजन करके शाम को आकर फिर से यहाँ रसोईघर का काम कर ।''

मुंज : ''जो आज्ञा, गुरुदेव !''

अब मुंज सुबह चार बजे उठकर गुरु-आश्रम के रसोईघर में काम करता । दोपहर ११ बजे तक भोजन बनाकर सबको खिलाता और फिर लकड़ियाँ काटने

शिष्य की श्रद्धा को परखने एवं उसकी योग्यता को बढ़ाने के लिए ही गुरु कसौटी करते हैं । सच ही तो है कि कंचन को भी कसौटी पर खरा उतरने के लिए कई बार अग्नि में तपना पड़ता है ।

''तू सेवा करने आया है या गुरु का अन्न हड़प करने के लिए आया है ? इधर रसोई बनाकर सबको खिला दे । फिर अपनी लकड़ी काट ले । लकड़ी बेचकर घर में भोजन करके शाम को आकर फिर से यहाँ रसोईघर का काम कर ।''

चला जाता । लकड़ियाँ बेचकर सीधा-सामान खरीदकर दो-ढाई बजे घर जाता । भोजन पकाकर खाता और शाम को पुनः आ जाता आश्रम के रसोईघर में । काम बहुत और खाना रूखा-सूखा। ऐसा करते-करते उसका शरीर बहुत दुर्बल हो गया ।

एक दिन लकड़ी काटकर उसका गट्ठा बनाकर मुंज जंगल से लौट रहा था । दुर्बलता के कारण चक्कर आ गये और एक कुएँ में लकड़ी के भारे सहित गिर पड़ा । जंगलों में पनघट बिना के कुएँ होते थे ।

गुरु ने देखा कि संध्या हो गयी । अभी तक मुंज खाना बनाने क्यों नहीं आया ? घर पर एक आदमी को भेजा तो समाचार मिला कि मुंज दोपहर से लकड़ी काटने गया है । अभी तक नहीं लौटा ।

जंगल में मुंज की खोज करवाने के लिए आदमियों को भेजा । उन्होंने आवाज लगाई : ''मुंज ! कहाँ है...? मुंज ! कहाँ है...?''

कुएँ में से आवाज आयी : ''मैं यहाँ हूँ...''

गुरु को खबर मिली । गुरुदेव स्वयं कुछ आदमियों को लेकर एवं सीढ़ी, रस्सी आदि लेकर चल पड़े । स्वयं दूर खड़े रहकर आदमियों से मुंज को बाहर निकलवाया ।

किसी ने कहा : ''देख, तेरी क्या हालत हो गयी ? तेरा मंदिर टूट गया । तेरा खानदान नष्ट हो गया । समाज से तू बहिष्कृत हो गया । तेरा घर बिक गया । तू मजदूरी करता था वह भी गुरु ने छुड़वा दी । अपना काम करवा रहे हैं और भोजन भी नहीं मिलता । तू ऐसे चक्कर खाकर मर जाता । शरीर होगा तभी तो साधना करेगा । अब तो ऐसे गुरु का पीछा छोड़ !''

गुरु ने उस आदमी को स्वयं ही भेजा था मुंज की श्रद्धा तुड़वाने के लिए किन्तु वाह रे मुंज !

मुंज कहता है : ''आप कृपा करके मुझे पुनः कुएँ में डाल दीजिए । भूखे रहकर मरना अच्छा है । कुएँ में भूखा मरूँगा किन्तु गुरु का होकर मरूँगा ।''

गुरु ने यह सुना तो उनका हृदय भर आया । गुरुदेव बोले : ''मुंज गुरु की आत्मा है । मुंज मेरा पक्का शिष्य है । मुंज मुझरूप हो गया । आज मेरा हृदय यह मुंज ही है । अब से तुम लोगों को मुंज से शिक्षा-दीक्षा लेनी होगी ।''

गुरु ने मुंज को सद्गुरु बना दिया । उसे सत्य का बोध करा दिया ।

मुंज की दृढ़ गुरुभक्ति ने उसे गुरुपद पर ही प्रतिष्ठित करवा दिया । कैसी विषम परिस्थितियाँ ! फिर भी मुंज हारा नहीं । कितने प्रयास किये गये श्रद्धा हिलाने के लिए किन्तु मुंज की श्रद्धा डिगी नहीं । तभी तो उसके लिए गुरु के हृदय से भी निकल पड़ा : ''यह तो मेरा हृदय है ।''

धन्य है मुंज की गुरुभक्ति ! धन्य है उसकी निष्ठा और धन्य है उसका गुरुप्रेम !

(पृष्ठ २६ का शेष)

पाकर रस चूसने के लिये वहाँ चिपक जाती है वैसे ही चित्त रूपी भ्रमर को परमात्मा के प्यार से प्रफुल्लित होते हुए अपने हृदयकमल पर बैठा दो, दृढ़ता से चिपका दो । अपने को वृत्तियों से बचाकर निःसंकल्पावस्था का आनंद बढ़ाते जाओ । मन विक्षेप डाले तो बीच-बीच में ॐ का प्यारा पावन गुँजन करके उस आनंद-सागर में मन को डुबाते जाओ । जब ऐसा निर्विषय निःसंकल्प अवस्था में आनंद आने लगे तो समझो यही आत्मदर्शन हो रहा है क्योंकि आत्मा आनंदस्वरूप है ।

इस आत्मध्यान से, आत्मचिन्तन से भोक्ता की बर्बादी रुकती है । भोक्ता स्वयं आनंदस्वरूप परमात्मामय होने लगता है, स्वयं परमात्मा होने लगता है । परमात्मा होना क्या है ... अनादि काल से परमात्मा था ही यह जानने लगता है ।

ठीक से अभ्यास करने पर कुछ ही दिनों में आनंद और अनुपम शान्ति का अहसास होगा । आत्मबल की प्राप्ति होगी । मनोबल व बुद्धिबल में वृद्धि होगी । चित्त के दोष दूर होंगे । अपने अस्तित्व का बोध होने मात्र से आनंद आने लगेगा । ध्यान-भजन-साधना से अपनी योग्यता ही बढ़ाना है । परमात्मा एवं परमात्मा से अभिन्नता सिद्ध किये हुए सद्गुरु को आपके हृदय में आत्मखजाना देने में देर नहीं लगती । बस, साधक को अपनी योग्यता का विकास करनेभर की देर है ।

❀

आपकी सबसे बड़ी कमजोरी

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

आज के दौर में मनुष्य श्रद्धा रखने के पूर्व, श्रद्धवान बनने के पूर्व तर्क पहले रखता है । हर बात में अपनी बुद्धि की बुद्धिमानी दर्शाना चाहता है लेकिन ऐसी बुद्धिमानी किस काम की जो आपको बुद्धिदाता से ही दूर रखे ? यह भी कैसा संयोग है कि आप स्वयं को बुद्धिमान मानते हैं फिर भी दुःखी, चिन्तित, भयभीत और शोकातुर हैं । जब आप सचमुच बुद्धिमान हैं तो ये सारी परेशानियाँ क्यों ? कोई बुद्धिमान भी हो और अज्ञानवश दुःख भी उठाये यह कैसे संभव है ?

आपकी सबसे प्रमुख कमजोरी है कि आप अपने-आप को बुद्धिमान मानकर दुःख झेल रहे हैं । दुःखों की निवृत्ति के लिये सिर्फ आपका बुद्धिमान होना ही पर्याप्त नहीं है । आपके पास जो बुद्धि है उससे ज्ञानवानों के वचनों को समझने से, उन्हें जीवन में उतारने से, उनमें श्रद्धा रखने से ही सच्ची शांति मिलेगी ।

दरअसल, यह आपकी सबसे प्रमुख कमजोरी है कि आप अपने-आप को बुद्धिमान मानकर दुःख झेल रहे हैं । दुःखों की निवृत्ति के लिये सिर्फ आपका बुद्धिमान होना ही पर्याप्त नहीं है । आपके पास जो बुद्धि है उससे ज्ञानवानों के वचनों को समझने से, उन्हें जीवन में उतारने से, उनमें श्रद्धा रखने से ही सच्ची शांति मिलेगी । श्रद्धा के सामने तर्क कोई मायना नहीं रखता । कितने ही लोगों का यह सवाल होता है कि : ''हम ईश्वरपरायण नहीं हुए, सत्संग-सेवा का लाभ नहीं लिया तो क्या घाटा पड़ जाएगा ? करोड़ों लोगों की तरह हम भी ऐसे ही खायें, पियें और जियें तो क्या फर्क पड़ेगा ?''

इस तरह के सवाल आपके मन-मस्तिष्क में विषयों, सुख-सुविधा और जगत के प्रति गहरे आकर्षण के प्रभाव को दर्शाते हैं । ईश्वरपरायण होने के पीछे भी आपका दगेबाज मन लाभ-हानि खोजता है, यह कितने अफसोस की बात है ! सही है ... यदि आप ईश्वरपरायण नहीं हुए तो किसे क्या फर्क पड़ेगा ? न तो इससे ईश्वर आपसे नाराज होंगे और न ही आपको किसी दण्ड का भागीदार बनना पड़ेगा । मगर आपको जो कुछ सहना होगा, वह किसी दण्ड से कम नहीं होगा । ईश्वर को छोड़कर जगतपरायण होना ही समस्त दुःखों का घर है । ईश्वर का सहारा त्यागकर नश्वर संसार का सहारा लेना, यही तो दुःखों का मूल है । जहाँ अशान्ति है, वहाँ से शान्ति कैसे मिलेगी ?

ईश्वरपरायण होने का अर्थ है हृदय में परमात्मशांति का प्राकट्य । भैया ! ईश्वरपरायण नहीं होने के पीछे कारण यही है कि आप संसार की तपन में इतने झुलसे हैं कि आपको शांति के शीतल स्रोत में तपन शांत करने की उत्कंठा भी नहीं रही । आप उस स्रोत को ही भूल गये । यदि आप ईश्वरपरायण हैं तो संसार भी आपको सुखदायी लगेगा क्योंकि आप संसार में रहेंगे, संसार के संबंधों में उलझने के लिये नहीं वरन् जिससे सच्चा संबंध है उससे संबंध प्रगाढ़ करके सत्यस्वरूप की अनुभूति करने के लिये ।

मगर धोखेबाज मन आपको हमेशा तर्क-कुतर्क के सहारे उलझाये रखता है । ईश्वरपरायण न होने से विषयों का चिन्तन होगा और विषयों का चिन्तन विष से भी अधिक खतरनाक है, हानिकारक है क्योंकि विषपान से मनुष्य एक बार मरता है परन्तु विषयों के चिन्तन से तो वह हर क्षण, हर पल, हर

दिन मरता ही रहता है । विषयों के चिन्तन से कामना उठेगी और वह पूरी होगी तो आसक्ति होगी । कामना पूरी नहीं होगी तो क्रोध होगा । क्रोध होगा तो बुद्धि का नाश होगा । बुद्धि का नाश हुआ तो सर्वनाश हुआ । यह बुद्धि के नाश का ही तो परिणाम है कि जहाँ आपको श्रीहरि के सहारे उन्नत होना है वहाँ आप तर्क-कुतर्क लड़ाकर अशांति बढ़ाते रहते हैं । मन में अशांति से ही क्रोध होता है ।

धोखेबाज मन आपको हमेशा तर्क-कुतर्क के सहारे उलझाये रखता है । ईश्वरपरायण न होने से विषयों का चिन्तन होगा और विषयों का चिन्तन विष से भी अधिक खतरनाक है ।

स्वयं भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में यही बात कही है :

ध्यायतो विषयान्पुंसः संगस्तेषूपजायते ।
संगात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते ॥
क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः ।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥

'विषयों का चिन्तन करनेवाले पुरुष की उन विषयों में आसक्ति हो जाती है, आसक्ति से उन विषयों की कामना उत्पन्न होती है और कामना में विघ्न पड़ने से क्रोध उत्पन्न होता है। क्रोध से अत्यन्त मूढ़भाव उत्पन्न हो जाता है । मूढ़भाव से स्मृति में भ्रम हो जाता है । स्मृति में भ्रम हो जाने से बुद्धि अर्थात् ज्ञानशक्ति का नाश हो जाता है और बुद्धि का नाश हो जाने से यह पुरुष अपनी स्थिति से गिर जाता है ।'

(भगवद्गीता : २.६२,६३)

जिसने सत्संग और सेवा का लाभ नहीं लिया, इसका महत्त्व नहीं समझा वह सचमुच अभागा है । आत्मवेत्ताओं का सत्संग तो मनुष्य के उद्धार का सेतु है । सत्संग माने सत्यस्वरूप परमात्मा में विश्रान्ति ।

जो भगवान का चिन्तन नहीं करेगा उसको संसार का चिन्तन होगा । संसार का चिन्तन क्या है ? राग-द्वेष की अग्नि, अहंकार का सर्जन, विषयों में गहरी प्रीति, जन्म-मृत्यु का लगातार जारी रहना । ब्रह्मचिन्तन करनेवाला थोड़े ही जन्म-मृत्यु जरा-व्याधि की चक्की में पिसता है ! जो आदमी विषय-विकारों में फँसा रहता है उसकी बुद्धि दबी रहती है । ईश्वर को पीठ दिखाना ही पतन की शुरूआत है ।

जिसने सत्संग और सेवा का लाभ नहीं लिया, इसका महत्त्व नहीं समझा वह सचमुच अभागा है । आत्मवेत्ताओं का सत्संग तो मनुष्य के उद्धार का सेतु है । सत्संग माने सत्यस्वरूप परमात्मा में विश्रान्ति । जिसके जीवन में सत्संग नहीं होगा, वह कुसंग तो जरूर करेगा और एक बार कुसंग मिल गया तो समझ लो तबाही ही तबाही, लेकिन अगर सत्संग मिल गया तो आपकी २१-२१ पीढ़ियाँ निहाल हो जाएँगी । हजारों यज्ञों, तपों, दानों से भी आधी घड़ी का सत्संग श्रेष्ठ माना गया है, सद्गुरु का सान्निध्य सर्वोपरि माना गया है क्योंकि सद्गुरु का सत्संग-सान्निध्य जीव को जीवपद से शिवपद में आरूढ़ करता है । इतना ही नहीं, सत्संग से आपके जीवन को सही दिशा मिलती है, मन में शान्ति, बुद्धि में बुद्धिदाता का ज्ञान छलकता है ।

सत्संग की आधी घड़ी,
सुमिरन वर्ष पचास...

आदमी कितना भी छोटा हो, कितना भी गरीब हो, कितना भी असहाय हो मगर उसे सत्संग मिल जाये तो वह इतना महान् बन सकता है कि उसकी महिमा कोई नहीं बतला सकता । जो सुख, सत्ता मिलने से और जो भोग, स्वर्ग मिलने से भी नहीं मिलता, वह सत्संग से सहज ही प्राप्त हो जाता है । सत्संग से आत्मशान्ति, परमात्मसुख की प्राप्ति होती है । यह वह सत्संग है जो हमें राग-द्वेष की अग्नि से, अहंकार सजाने की आदत से, विषयों में आसक्ति से बचाकर अंततोगत्वा जन्म-मृत्यु के बंधन से भी विनिर्मुक्त कर नारायण पद में विश्रान्ति दिला देता है । तुलसीदासजी ने कहा है :

एक घड़ी आधी घड़ी आधी में पुनि आध ।
तुलसी संगत साध की हरे कोटि अपराध ॥

जीवन में जितना-जितना सेवा का महत्त्व समझ में आयेगा उतना-उतना कल्याण होता जाएगा । विवेकानंद कहा करते थे : ''भगवान ने दरिद्रों को जन्म देकर तुम्हें सेवा का अवसर दिया है । उनकी सेवा करके उन पर कोई एहसान नहीं करते हो ।''

हजारों यज्ञों, तपों, दानों से भी आधी घड़ी का सत्संग श्रेष्ठ माना गया है, सद्गुरु का सान्निध्य सर्वोपरि माना गया है क्योंकि सद्गुरु का सत्संग-सान्निध्य जीव को जीवपद से शिवपद में आरूढ़ करता है ।

अंत:करण की शुद्धि का, अहंकार से मुक्ति का सीधा सरल उपाय है कि आप नि:स्वार्थभाव से सेवा में जुट जाइये । जो समझदार हैं वे कहीं-न-कहीं से सेवा का अवसर ढूँढ़कर अपना काम बना लेते हैं ।

आपने यदि सत्संग-सेवा का लाभ नहीं लिया तो कोई खास घाटा नहीं पड़ेगा । बस, सत्संग से वंचित रहे तो मनुष्य जन्म का महत्त्व नहीं समझ पाएँगे और सेवा से वंचित रहे तो जन्म-जन्मान्तर से आपके मन में 'मेरे-तेरे' का जो मैल जमा है उसे कभी धो नहीं पाएँगे । आप भी करोड़ों लोगों की तरह दु:खी, चिन्तिन रहेंगे । सब कुछ होते हुए भी आप सुख के लिये हाथ फैलाते रहेंगे । जो मन में आया वह खाया-पिया, जैसे चाहा वैसे जिया तो जीवन मुसीबतों का घर बन जाएगा । आज यही तो हो रहा है । जीवन से श्रद्धा और संयम उठ गया तो मानव घोर अशान्त हो गया । जब तक संयम नहीं होगा, तब तक कष्ट सहना पड़ेगा ।

''भगवान ने दरिद्रों को जन्म देकर तुम्हें सेवा का अवसर दिया है । उनकी सेवा करके उन पर कोई एहसान नहीं करते हो ।''

इसलिए कृपानाथ ! ऐसे बेबुनियादी प्रश्नों, तर्कों-कुतर्कों में अपने को मत उलझाइये । यदि हजारों-लाखों लोग आज ईश्वरपरायण होकर, सत्संग-सेवा का महत्त्व समझकर, जीने का ढंग सीखकर अपने जीवन को सफल कर रहे हैं तो आप क्यों व्यर्थ की मान्यताओं में जकड़कर दु:खी, चिन्तित हैं ? आप भी उन महापुरुषों का परम प्रसाद पाकर अपने जीवन को महकाइये । हे प्रेमस्वरूप ! हे आनंदस्वरूप ! हे सुखस्वरूप मानव ! सुख, प्रेम और आनंद के लिए अपने को क्यों बाहर भटका रहा है, झुलसा रहा है... खपा रहा है... तपा रहा है ? ठहर... रुक जा । अपने आपको देखने की कला किन्हीं ब्रह्मज्ञानी महापुरुषों से सीख ताकि पता चले कि तू कितना मधुर है... तू कितना प्यारा है... तू कितना सुखस्वरूप महान् आत्मा है...!

(पृष्ठ १६ का शेष)

को लगाये रखना । मैंने अपनी माँ से ऐसा नहीं कहा है कि मैं मर जाऊँगा, क्योंकि संतों की वाणी में मैंने सुना है कि मैं तो मरता नहीं हूँ । मरती तो देह है । अब आप खुशी से मुझे मृत्युदंड दीजिये ।''

शिवाजी का हृदय भर आया । उन्होंने कहा :

''मालवजी । तेरे जैसे सत्यनिष्ठ और वीर युवानों की तो मुझे बहुत आवश्यकता है । मैं तुझे अपने साथ ही रखूँगा ।''

कितने बुद्धिमान और गुणग्राही थे शिवाजी ! सामने शत्रु खड़ा है, उसमें भी सद्गुण देख रहे हैं ! यह गुणग्राही दृष्टि का प्रभाव है । जिनके जीवन में धर्म का प्रभाव है उनके जीवन में सारे सद्गुण आ जाते हैं, उनका जीवन ऊँचा उठ जाता है, दूसरों के लिये उदाहरणस्वरूप बन जाता है ।

आप भी धर्म के अनुकूल आचरण करके अपना जीवन ऊँचा उठा सकते हो । फिर आपका जीवन भी दूसरों के लिये आदर्श बन जाएगा जिससे प्रेरणा लेकर दूसरे भी अपना जीवन-स्तर ऊँचा उठाने को उत्सुक हो जाएँगे ।

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

जिसके जीवन में सत्त्वगुण नहीं है, दैवी लक्षण नहीं हैं वह सुख के पीछे भटक-भटककर जीवन खत्म कर देता है। सुख तो उसे जरा-सा मिला न मिला लेकिन दुःख, मुसीबत और चिंता उसके भाग्य में सदा ही बनी रहती है।

अगर मनुष्य अपने जीवन में सब दुःखों की निवृत्ति और परम सुख की प्राप्ति चाहता है तो उसे अपने जीवन में सत्त्वगुण की प्रधानता लानी चाहिए। निर्भयता, दान, इन्द्रिय-दमन, संयम, सरलता आदि सद्गुणों को पोषण दे और दुर्गुणों को निकाले। ज्यों-ही सद्गुणों में प्रीति बढ़ेगी त्यों दुर्गुण अपने-आप निकलते जायेंगे। अभी सद्गुणों में प्रीति नहीं है इसलिए हम दुर्गुणों को पोसते हैं। थोड़ा जमा... थोड़ा उधार... ऐसा करते रहते हैं।

> *अगर मनुष्य अपने जीवन में सब दुःखों की निवृत्ति और परम सुख की प्राप्ति चाहता है तो उसे अपने जीवन में सत्त्वगुण की प्रधानता लानी चाहिए।*

पामरों और कपटियों को सुखी देखकर हमें लगता है कि 'इसने किया तो हम भी ऐसा करें।' नहीं नहीं... ऐसा मत सोचो। वह भैंसा, बैल या वृक्ष बनकर जो सहेगा वह तो बाद में दिखेगा। इसलिए अभी तुम उसकी नकल मत करो लेकिन 'कबीरजी होते तो क्या करते ? श्रीराम होते तो क्या करते ? गार्गी होती तो क्या करती ? मदालसा होती तो क्या करती ? शबरी भीलनी होती तो क्या करती ?' ऐसा सोचकर अपने जीवन को दिव्य बनाने का यत्न करो।

> *यदि ठीक दृष्टि मिल जाये, जीवन जीने का सही ढंग आ जाये तो सारा संसार नंदनवन हो जाता है।*

दिव्य जीवन बनाने के लिए दृढ़ संकल्प होना चाहिए। दृढ़ संकल्प करने के लिए सुबह जल्दी उठो। प्रातःकाल स्नान करके अभ्यास करो। जप-ध्यान करो। थोड़े ही दिन में आपका अंतःकरण पावन होगा और आपमें सत्त्वगुण बढ़ेगा।

एक गुण दूसरे गुण को ले आता है ऐसे ही एक अवगुण दूसरे अवगुण को ले आता है। एक पाप दूसरे पाप को ले आता है, ऐसे ही एक पुण्य दूसरे पुण्य को ले आता है। आप जिसे सहयोग दोगे वह बढ़ेगा। आप सद्गुणों को सहयोग दोगे तो इससे सद्गुण बढ़ेंगे, ज्ञान शोभा देगा।

अपने जीवन में जितना सत्त्वगुण आता है, उतना ही जीवन का महत्त्व समझ में आता है। यदि ठीक दृष्टि मिल जाये, जीवन जीने का ढंग आ जाये तो संसार नंदनवन हो जाता है।

दो दोस्त थे। वे बगीचे में घूमने गये। उन्होंने एक गिरगिट देखा। एक ने कहा : ''यह गिरगिट पीला है।''

दूसरे ने कहा : '' बेवकूफ कहीं का ! यह तो लाल है। तेरे को पीलिया हो गया है इसलिए तू पीला देखता है।''

पहला : ''तेरे को क्रोध है, इसलिए तू लाल देखता है।''

गिरगिट तो चला गया लेकिन दोनों दोस्त आपस में भिड़ गये। फिर उन्होंने सोचा कि हम माली से जाकर पूछें कि गिरगिट लाल है या पीला।

उन्होंने माली से जाकर पूछा : ''गिरगिट लाल होता है कि पीला ?''

माली ने कहा : ''तुम दोनों सही हो।''

दोनों बोल उठे : ''दोनों सही कैसे ?''

माली : ''गिरगिट लाल भी होता है और पीला भी होता है।''

''एक ही गिरगिट लाल और पीला कैसे ?''

''वह बार-बार रंग बदलता रहता है । कभी लाल दिखता है कभी पीला दिखता है कभी हरा दिखता है ।'' दोनों दोस्तों का समाधान हो गया और उनको शांति मिली ।

ऐसे ही परमात्मा के विषय में आपस में मतभेद होते हैं । कोई बोलता है : 'परमात्मा ऐसा है ।' कोई बोलता है : 'परमात्मा वैसा है ।' लेकिन जब सद्गुरुरूपी माली से मिलते हैं तब पता चलता है कि परमात्मा कैसा है । 'ऐसा है... ऐसा नहीं है...' इस प्रकार मानते रहते हो लेकिन तुम्हारे भीतर की स्थिति जैसी होगी वैसा ही दिखाई पड़ेगा । गुरु ही सही ज्ञान देते हैं जिससे सारे संशय मिट जाते हैं और जीव को अपने स्वरूप का दर्शन होता है ।

सद्गुरुकृपा से अगर तुम्हारी वास्तविक आँख एक बार खुल जाये तो वह सुख मिलता है जो सुख ब्रह्माजी को मिलता है, जिसमें भगवान शिवजी रमण करते हैं ।

गुरु बिन भवनिधि तरहिं न कोई ।
चाहे बिरंचि संकर सम होई ॥

चाहे शिवजी जैसा प्रलय करने का सामर्थ्य आ जाये, ब्रह्माजी जैसा सृष्टि करने का सामर्थ्य आ जाये फिर भी जब तक सद्गुरु की कृपा नहीं होती, उनका ज्ञान नहीं मिलता तब तक आवरण भंग नहीं होता ।

दिल में छुपा हुआ वह दिलबर करोड़ों युगों से था, बाद में भी रहेगा और अभी भी है लेकिन दिखता नहीं है । आदमी अपने को आँखवाला मानता है लेकिन हकीकत में शरीर की आँख तुम्हारी आँख नहीं है । यह बाहर की आँख है । सद्गुरुकृपा से अगर तुम्हारी वास्तविक आँख एक बार खुल जाये तो वह सुख मिलता है जो सुख ब्रह्माजी को मिलता है, जिसमें भगवान शिवजी रमण करते हैं, जिस तत्त्व में कबीरजी डटे रहते थे, गुरु नानकजी जिस नामनशे में डूबे रहते थे, छके रहते थे । उसको तुम पाओ भैया ! उसीमें तुम लग जाओ ।

❀

माया से पार होने का उपाय : प्रपत्तियोग

मैं अरु मोर तोर की माया ।
बस कर दीन्ही जीवन काया ॥

'मैं' और 'मेरे' की माया ने मनुष्य को वश कर लिया है । मनुष्य का मन माया के विभिन्न रूपों में भटकता रहता है । चाहते हुए भी मनुष्य इससे नहीं निकल पाता क्योंकि पुराने कई जन्मों के संस्कारों ने बुद्धि को, मन को, इन्द्रियों को बाँध कर माया में जकड़ रखा है । महापुरुष कहते हैं कि इस माया से निकलने के लिए परिश्रम नहीं, सच्ची समझ चाहिए, गुरुओं का सत्संग एवं सान्निध्य चाहिए। सच्ची समझ कहाँ से मिलती है ? सद्गुरु के सत्संग एवं सान्निध्य से सच्ची समझ मिलती है । सच्ची समझ क्या है ? जो दिख रहा है वह माया है लेकिन जिससे देखा जा रहा है, जिसकी सत्ता सर्वत्र विभिन्न रूपों में विद्यमान है, वह परमात्मा है । भगवान की महान शक्तियाँ अलग-अलग जगह काम करती हैं । हम सब निमित्त मात्र हैं । हमारा कोई अलग अस्तित्व नहीं है । सब उस परमात्मा की अठखेलियाँ हैं । 'मैं' और 'मेरा' यह अहं वास्तव में नहीं है । वह मिथ्या है । यह समझ में आ जाये तो मनुष्य का चौरासी का चक्कर ही मिट जाये ।

पुराने कई जन्मों के संस्कारों ने बुद्धि को, मन को, इन्द्रियों को बाँध कर माया में जकड़ रखा है । महापुरुष कहते हैं कि इस माया से निकलने के लिए परिश्रम नहीं, सच्ची समझ चाहिए, गुरुओं का सत्संग एवं सान्निध्य चाहिए ।

यह समझ लाने के लिए क्या किया जाये ? महापुरुष कहते हैं कि बस, ईश्वर की शरण, भगवान और संत-सद्गुरु की शरण चले जाओ । अपना अहं उनको अर्पित कर दो । दुःख, चिंता, हताशा, निराशा त्यागकर अपने-आपको समर्पित कर दो । उन संतों की शरण में सच्चे मार्ग एवं सच्ची समझ का महाद्वार खुलने लगेगा । तुम प्रसन्नता और आनंद का अनुभव करोगे । सिर्फ अपना बेईमानी का अहं मिटा

दो । अपने संकीर्ण विचारों को विलीन होने दो ।

एक बार एक साधु ने गुरु से दीक्षा ली । वह ईश्वर की शरण था । उसने सुना कि कामरूप देश में तांत्रिक विद्या का बड़ा बोलबाला है । वहाँ की स्त्रियों ने तंत्रविद्या के बल से पुरुषों को तोता, बंदर बना रखा है । साधु ने सोचा : 'स्त्रियाँ इतनी बलशाली कैसे हो गयीं कि तंत्रविद्या से पुरुषों को जानवर की तरह नचाकर पिंजरे में बंद कर देती हैं ? मैं भी वहाँ जाता हूँ । मुझे किसी स्त्री ने देखा तो मैं गुरुमंत्र का जाप शुरू कर दूँगा ।' फिर सोचा : 'जायें कि नहीं जायें ? एक तो स्त्रीचरित्र, दूसरा कामरूप देश और तीसरा तंत्रविद्या का बोलबाला ।' एक मन ने कहा : 'जाओ ।' दूसरा मन बोलता है : 'नहीं जाओ ।' साधु ने दृढ़ता से मन को कहा : 'चलो, कामरूप देश देख आएँ ।'

लुभावना शृंगार किये हुए एक महिला आई और साधु को निहारने लगी, मुस्कुराने लगी । सोचने लगी कि : 'चलो, अब इसको भी तोता बनाया जाय ।'

साधु गया कामरूप देश में । भिक्षा माँगते-माँगते एक पेड़ के नीचे बैठ गया । इतने में लुभावना शृंगार किये हुए एक महिला आई । उसके साथ एक युवक भी था । वे साधु के पास आकर बैठ गये । वह महिला साधु को निहारने लगी, मुस्कुराने लगी । सोचने लगी कि : 'चलो, अब इसको भी तोता बनाया जाय ।'

साधु ने सोचा : 'अब यह मुझे तोता बनाने की कोशिश कर रही है ।' उसने मन में गुरुमंत्र का जाप शुरू कर दिया । साथ ही ईश्वर से प्रार्थना की : 'हे मेरे प्रभु ! मैं तेरी शरण हूँ । मैं तेरा हूँ ।' तब अंदर से आवाज आयी : 'तू घबरा मत । तू मेरा है तो चिंता क्यों ?' उसका मन स्थिर हो गया ।

युवक बोला : "मैं कभी बंदर हूँ कभी तोता हूँ क्योंकि वह स्त्री जैसा बोलती है वैसा ही मैं करता हूँ ।"

स्त्री ने सोचा : 'साधु तो बड़ा ही अटल है !' उसने साधु को लुभाने के लिए दूसरा कटाक्ष फेंका और गाना गाने लगी । वह गीत गुनगुनाते हुए साधु को निहारती और मुस्कुराती रही लेकिन साधु ने फिर से गुरुमंत्र का जप किया, प्रार्थना की । फिर साधु की अंतरात्मा ने कहा : 'तू मेरी शरण है । चिंता मत कर ।'

फिर स्त्री ने गीत के साथ नृत्य करना शुरू किया । साधु ने कानों में उँगलियाँ डाल लीं और आँखें बंद कर लीं । मन-ही-मन ईश्वर से प्रार्थना की : 'हे प्रभु ! मैं तुम्हारी शरण हूँ ।' तब अंदर से आवाज आयी : 'जब तू मेरी शरण है तो फिक्र छोड़ दे ।' साधु मन-ही-मन हँसा : 'हे प्रभु ! मेरी छोटी बुद्धि तुझे बार-बार पुकारती है, जबकि तू मेरे इतने नजदीक है, मेरे हृदय में ही है, फिर भी मैं चिंतित हूँ ।'

उस साधु को अपनी क्षुद्र बुद्धि पर हँसी आ रही थी । परन्तु उस स्त्री को लगा कि साधु उसके नृत्य और गान का मजाक उड़ा रहा है और हँस रहा है । स्त्री का मन दुर्बल हो गया । उसने अपने साथी युवक से कहा : "जाओ, साधु को अपनी बातचीत से वश में करो । उस साधु को मुझसे बातचीत करने को कहो ।" वह युवक जो उसके तोते के समान था, स्त्री-लम्पट था, साधु के पास आया । उसके श्वासोच्छ्वास के संपर्क में आने से साधु का मन भयाक्रांत हुआ । उसने फिर से ईश्वर का स्मरण किया । फिर अंदर से आवाज आयी :

'वत्स ! ईश्वर की शरण होकर भी भयभीत क्यों है ? जिसमें लाखों लाखों स्त्रियाँ पैदा हो-होकर लीन हो गईं, ऐसा वह परमात्मा तेरे साथ है और तू घबरा रहा है ?' फिर साधु ने स्थिरचित्त होकर उस युवक को दृढ़ मनोबल से देखा । तब उस युवक ने कहा : "मैं भी पहले ऐसा ही था लेकिन इस देश में आने पर तोता बना दिया गया ।"

साधु ने कहा : "लेकिन तू तोता कहाँ है ? तू तो इन्सान है !"

युवक बोला : "नहीं, मैं कभी बंदर हूँ कभी तोता

(शेष पृष्ठ १३ पर)

परमानंद की प्राप्ति का साधन

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

आत्मकल्याण के इच्छुक व ईश्वरानुरागी साधकों को आत्मशान्ति, आत्मबल प्राप्त करने के लिये, चित्तशुद्धि के लिये ज्ञानमुद्रा बड़ी सहाय करती है। ब्रह्ममुहूर्त की अमृतवेला में शौच-स्नानादि से निवृत्त होकर गर्म आसन बिछाकर पद्मासन, सिद्धासन या सुखासन में बैठ जाओ। १०-१५ प्राणायाम कर लो। यदि त्रिबन्ध के साथ प्राणायाम हों तो बहुत अच्छा है। तदनन्तर दोनों हाथों की तर्जनी यानी पहली अँगुली के नाखून को अंगूठों से हल्का-सा दबाकर दोनों हाथ को घुटनों पर रखो। शेष तीन अंगुलियाँ सीधी व परस्पर जुड़ी रहें। हथेली ऊपर की ओर रहे। गर्दन व रीढ़ की हड्डी सीधी। आँखें अर्धोन्मिलित एवं शरीर अडोल रहे।

अब गहरा श्वास लेकर 'ॐ...' का दीर्घ गुँजन करो। प्रारंभ में ध्वनि कण्ठ से निकलेगी, फिर गहराई में जाकर हृदय से 'ॐ' की ध्वनि निकालिये। बाद में और गहरे जाकर नाभि या मूलाधार से ध्वनि उठाइये। उस ध्वनि से सुषुम्ना का द्वार खुलता है और जल्दी से आनंद प्राप्त होता है। चंचल मन तब तक भटकता रहेगा, जब तक उसे भीतर का आनंद नहीं मिलेगा। ज्ञानमुद्रा व 'ॐ' की ध्वनि से मन की भटकान शीघ्र बन्द होने लगेगी। ध्यान के समय जो काम करने की जरूरत न हो उसका चिन्तन छोड़ दो। चिन्तन आ जाय तो 'ॐ अगड़ं-बगड़ं स्वाहा' करके उस व्यर्थ चिन्तन से अपना पिण्ड छुड़ा लो।

संकल्प करके बैठो कि हम अब ज्ञानमुद्रा में, 'ॐ' की पावन ध्वनि के साथ वर्त्तमान घड़ियों का पूरा आदर करेंगे। मन कुछ देर टिकेगा... फिर इधर-उधर के विचारों की जाल बुनने लग जाएगा। दीर्घ स्वर से 'ॐ' की ध्ननि करके मन को पुन: खींचकर वर्त्तमान में लाओ। मन को प्यार से, पुचकार से समझाओ। ८-१० बार 'ॐ' की ध्वनि करके शान्त हो जाओ। शरीर के भीतर वक्षस्थल में तालबद्ध धड़कते हुए हृदय को मन से निहारते रहो... निहारते रहो... मानो शरीर को जीने के लिये उसी धड़कन के द्वारा विश्व-चैतन्य से सत्ता-स्फूर्ति प्राप्त हो रही है। हृदय की उस धड़कन के साथ 'ॐ... राम...' मंत्र का अनुसंधान करते हुए मन को जोड़ दो। हृदय की धड़कन के रूप में हर क्षण अपने को प्रकट करनेवाले उस सर्वव्यापक परमात्मा को स्नेह करते जाओ। हमारी शक्ति को क्षीण करनेवाली, हमारा आत्मिक खजाना लूटकर हमें बेहाल करनेवाली भूतभविष्य की कल्पनाएँ हृदय की इन वर्त्तमान धड़कनों का आदर करने से कम होने लगेंगी। हृदय में प्यार व आनंद उभरता जायेगा। जैसे मधुमक्खी सुमधुर सुगंधित पुष्प

(शेष पृष्ठ १९ पर)

> *जैसे मधुमक्खी सुमधुर सुगंधित पुष्प पाकर रस चूसने के लिये वहाँ चिपक जाती है वैसे ही चित्तरूपी भ्रमर को परमात्मा के प्यार से प्रफुल्लित होते हुए अपने हृदयकमल पर बैठा दो, दृढ़ता से चिपका दो।*

> *आत्मध्यान से, आत्मचिन्तन से भोक्ता की बर्बादी रुकती है। भोक्ता स्वयं आनंदस्वरूप परमात्मामय होने लगता है, स्वयं परमात्मा होने लगता है। परमात्मा होना क्या है... अनादि काल से परमात्मा था ही यह जानने लगता है।*

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

जनकपुरी में लगी आग

महर्षि याज्ञवल्क्य के सत्संग-प्रवचन में जब राजा जनक पहुँचते तभी महर्षि अपने प्रवचन का प्रारम्भ करते थे । प्रतिदिन ऐसा होने से सत्संग में आनेवाले अन्य ऋषि-मुनि एवं तपस्वियों को मन में ऐसा होता था कि याज्ञवल्क्य जैसे महर्षि भी सत्तावानों की, धनवानों की खुशामद करते हैं । क्या हम साधु-महात्मा उनके श्रोता नहीं हैं ?

साधु-महात्माओं के मन की बात महर्षि भाँप गये । उनके मन में आया कि गुरु के प्रति यदि थोड़ी-सी भी श्रद्धा में कमी आएगी तो इन्हें लाभ नहीं हो पाएगा । उनकी शंका को दूर करने के लिए महर्षि ने एक लीला रची ।

जनकपुरी के चहुँ ओर आग लग गई । अनुचर भागता हुआ आया । सत्संग-श्रवण में तल्लीन राजा जनक को समाचार दिया :

''महाराज ! जनकपुरी के चारों ओर आग लग गई है ।''

राजा ने उसे धीरे-से कहा : ''अभी तो मरे मन में अज्ञान की भीषण आग लगी है, उसे सत्संगरूपी अमृतवर्षा से बुझा रहा हूँ । इस कार्य में विघ्न मत डाल । तू भी यहाँ शांति से बैठ जा ।''

थोड़ी देर में दूसरा आदमी आया । फिर तीसरा आया । उन सबको राजा जनक ने यही समझाकर बिठा दिया : ''वह तो संसार की बाह्य आग है । एक दिन तो सबको उसमें जलना ही है । तुम लोग चुपचाप बैठ जाओ । मेरी अज्ञानरूपी आग पर हो रही सत्संगरूपी अमृतवर्षा से मेरी भीतरी आग बुझा लेने दो ।''

इतने में राजा का मंत्री आया और बोला :

''राजन् ! आग लगी है । महल के इर्द-गिर्द आग की लपटें नियंत्रण से बाहर हो रही हैं ।''

यह सुनकर सत्संग में बैठे अन्य साधु-महात्मा उठे और भागने लगे ।

उन्हें भागते देखकर महर्षि याज्ञवल्क्य ने पूछा :

''आप लोग क्यों भाग रहे हो ?''

तब किसीने कहा मेरा तुम्बा जल जायेगा तो किसीने कहा मेरी कौपीन जल जायेगी ।

महर्षि याज्ञवल्क्य : ''अरे महात्माओं ! राजा जनक तो अपने महल की भी चिंता नहीं करते और आप लोग ऐसी छोटी-मोटी वस्तुओं की चिंता कर रहे हो ? बैठ जाओ । यह वास्तविक आग नहीं है । यह तो मेरी योगशक्ति की लीला थी ।''

तब साधुओं को अपनी स्थिति एवं राजा जनक की स्थिति का अंतर समझ में आया ।

वे समझ गये कि महर्षि याज्ञवल्क्य सत्संग शुरू करते समय धनवान और सत्तावान राजा जनक की खुशामद करने के लिए उनकी प्रतीक्षा नहीं करते थे अपितु अपने सच्चे मुमुक्षु शिष्य की प्रतीक्षा

''महाराज ! जनकपुरी के चारों ओर आग लग गई है ।''राजा ने उसे धीरे-से कहा : ''अभी तो मेरे मन में अज्ञान की भीषण आग लगी है, उसे सत्संगरूपी अमृतवर्षा से बुझा रहा हूँ ।''

महर्षि याज्ञवल्क्य सत्संग शुरू करते समय धनवान और सत्तावान राजा जनक की खुशामद करने के लिए उनकी प्रतीक्षा नहीं करते थे अपितु अपने सच्चे मुमुक्षु शिष्य की प्रतीक्षा करते थे ।

करते थे । साधु-महात्माओं को समझ में आ गया कि महाराज जनक राज्य भोगते भोगते भी साधु हैं । उनके मन पर संसार की परिस्थिति का कोई प्रभाव नहीं पड़ता । वास्तव में वे ही ब्रह्मज्ञान के अधिकारी हैं ।

❀

संसार कर्मभूमि है

एक बार माँ पार्वती ने भगवान शिव से पूछा :

''भगवन् ! कई ऐसे लोग देखे गये जो थोड़ा-सा ही प्रयत्न करते है और सहज में ही उनके पास अनायास ही रथ, वस्त्र-अलंकार आदि धन-वैभव मंडराता रहता है और ऐसे भी कई लोग हैं जो खूब प्रयास करते हैं फिर भी उन्हें नपा-तुला मिलता है । ऐसे भी कई लोग हैं जो जिन्दगीभर प्रयत्न करते हैं फिर भी वे ठनठनपाल ही रह जाते हैं । जब सृष्टिकर्त्ता एक ही है, सबका सुहृद है, सबका है तो सबको एक समान चीजें क्यों नहीं मिलतीं ?''

> ***''जिसने किसी भी मनुष्य जन्म में बिना माँगे जरूरतमंदों को दिया होगा और मिली हुई संपत्ति का सदुपयोग किया होगा तो प्रकृति उसे अनायास सब देती है ।''***

भगवान शिव ने कहा :

''जिसने किसी भी मनुष्य जन्म में, फिर चाहे दो जन्म पहले, दस जन्म पहले या पचास जन्म पहले बिना माँगे जरूरतमंदों को दिया होगा और मिली हुई संपत्ति का सदुपयोग किया होगा तो प्रकृति उसे अनायास सब देती है । जिन्होंने माँगने पर दिया होगा, नपा-तुला दिया होगा, उन्हें इस जन्म में मेहनत करने पर नपा-तुला मिलता है और तीसरे वे लोग हैं जिन्होंने पूर्वजन्म में न पंचयज्ञ किये, न अतिथि-सत्कार किया, न गरीब-गुरबों के आँसू पोंछे, न गुरुजनों की सेवा की वरन् केवल अपने लिए ही संपत्ति का उपयोग किया और कंजूस बने रहे ऐसे लोग इस जन्म में मेहनत करते हुए भी ठीक से नहीं पा सकते हैं और प्रकृति उन्हें देने में कंजूसी करती है ।''

> ***''जिन्होंने पूर्वजन्म में न पंचयज्ञ किये न अतिथि-सत्कार किया, न गरीब-गुरबों के आँसू पोंछे न गुरुजनों की सेवा की वरन् केवल अपने लिए ही संपत्ति का उपयोग किया और कंजूस बने रहे ऐसे लोग इस जन्म में मेहनत करते हुए भी ठीक से नहीं पा सकते हैं और प्रकृति उन्हें देने में कंजूसी करती है ।''***

तब माँ पार्वती कहती हैं : ''ऐसे लोग भी तो हैं, प्रभु ! कि जिनके पास धन-संपदा तो अथाह है लेकिन वे प्राप्त संपदा का भोग नहीं कर सकते ।''

शिवजी ने कहा : ''जिन्होंने जीवनभर संग्रह किया लेकिन मरते समय उन्हें ऐसा लगा कि कुछ तो कर जायें ताकि भविष्य में मिले... इस भाव से अनाप-शनाप दान कर दिया तो उन्हें दूसरे जन्म में धन-संपदा तो अनाप-शनाप मिलती है किन्तु वे उसका उपयोग नहीं कर सकते क्योंकि जो पहले भी किसीके काम में नहीं आया, वह उनके काम में कैसे आ सकता है ?''

माँ पार्वती : ''हे ज्ञान-निधे ! ऐसे भी कई लोग हैं जिनके पास धन, विद्या, बाहुबल बहुत है फिर भी वे अपने कुटुम्बियों के, पत्नी के प्रिय नहीं दिखते और कुछ लोग ऐसे भी हैं जिनके पास धन-संपदा नहीं है, बाहुबल, सत्ता नहीं है, सौन्दर्य नहीं है, मुट्ठीभर हाड़पिंजर शरीर है फिर भी कुटुम्बियों का, पत्नी का बड़ा स्नेह उन्हें मिलता है ।''

शिवजी : ''हे उमा ! जिन्होंने अपना बाल्यकाल, अपना पूर्वजन्म संयमपूर्वक एवं दूसरों को मान देकर गुजारा है उनको कुटुम्बी स्नेह करते हैं और वे गरीबी में भी सुखी जीते हैं लेकिन जिन्होंने पूर्वजन्म के दान-पुण्य के बल से धन-सत्तादि तो पा ली है किन्तु दूसरों को हृदयपूर्वक स्नेह नहीं किया है, मान नहीं दिया है, दूसरों का शोषण करते हैं उन्हें कुटुम्बी मान नहीं देते ।''

संसार एक कर्मभूमि है । Every action creates

reaction. आप जो भी करते हैं वह घूम-फिरकर आपके ही पास आता है । अत: आप स्नेह देंगे तो स्नेह मिलेगा, मान देंगे तो मान मिलेगा लेकिन मान मिले इस वासना से नहीं वरन् जिनको भी मान दें 'उनकी गहराई में मेरा परमात्मा है' इस भाव से मान दें तो आपके भाव में परमात्मा प्रगटेगा और सामनेवाले के हृदय में आपके लिए मान-आदर प्रगट हो जायेगा ।

मान लेने के लिए नहीं वरन् मान देने के लिए व्यवहार करो । हम बड़े में बड़ी गलती क्या करते हैं ? पत्नी चाहती है मेरी चले, पति चाहता है मेरी चले । बहू चाहती है मेरी चले, सास चाहती है मेरी चले । देवरानी चाहती है मेरी चले, जेठानी चाहती है मेरी चले । पति-पत्नी, माँ-बाप, पुत्र-बहू, देवर-जेठ आदि सब चाहते हैं मेरी चले, मुझे सुख मिले, मुझे मान मिले ।

हकीकत में सुख और मान लेने की चीज नहीं, देने की चीज है । जो सुख का दाता है वह दु:खी कैसे रह सकता है ? आप सुख के भिखारी न बनो, मान के भिखारी न बनो अपितु सुख और मान देने लगो । कोई सुख और मान दे या न दे इसकी परवाह न करो तो आपके हृदय में सुख और मान का प्रकाश और माधुर्य प्रगट होने लगेगा ।

कोई कहता है : ''बाबाजी ! फलाना आदमी बड़ी गुप्त सेवा करता है । उसने सत्संग में बहुत सेवा की । उसको तो हार पहनाने का मौका तक नहीं मिला ।''

अरे ! हार पहनाने का मौका नहीं मिला तो क्या हुआ ? अखबार में नाम नहीं आया तो क्या हुआ ? वह ईश्वर का दैवी कार्य करता है तो उसका हृदयेश्वर तो उसकी सेवा स्वीकार कर ही रहा है । क्या ईश्वर के दो ही हाथ हैं कि जिस हाथ से सेवा लेता है उसी हाथ से बदला दे क्या ? नहीं, हजारों-हजारों हाथ ईश्वर के हैं और बिना हाथ भी ईश्वर आपको अपना कृपा-प्रसाद देता है, आपके हृदय में आनंद, माधुर्य और सद्‌बुद्धि देता है इसलिए ईश्वर के दैवी कार्य में प्रशंसा की चाहना न रखो । प्रशंसनीय सत्कार्य करो और वह सत्कार्य ईश्वर को अर्पण कर दो । ईश्वरीय सुख, ईश्वरीय आनन्द देर-सबेर आपको प्राप्त हो जायेगा ।

❀ जो आज्ञापालन करना जानता है, वही आज्ञा देना भी जानता है । पहले आज्ञापालन करना सीखो । हम चाहते हैं संगठन । संगठन ही शक्ति है और उसका रहस्य है आज्ञापालन ।

❀ ईर्ष्या और अहंकार छोड़ दो । एक होकर दूसरों के लिए कार्य करना सीखो । यही हमारे देश की एक बड़ी आवश्यकता है । - स्वामी विवेकानंद

सेवफल

प्रातःकाल खाली पेट सेवफल का सेवन स्वास्थ्य के लिये लाभदायक है । सेव को छीलकर नहीं खाना चाहिए क्योंकि इसके छिलके में कई महत्त्वपूर्ण क्षार होते हैं । इसके सेवन से मसूड़े मजबूत होते हैं, दिमाग शांत होता है व अच्छी नींद आती है । यह रक्तचाप को कम करता है ।

सेव वायु तथा पित्त का नाश करनेवाला, पुष्टिदायक, कफकारक, भारी, रस तथा पाक में मधुर, ठंडा, रुचिकारक, वीर्यवर्धक, हृदय के लिये हितकारी व पाचनशक्ति को बढ़ानेवाला है ।

रक्तविकार के कारण बार-बार फोड़े-फुन्सियाँ होती हों, जीर्ण त्वचारोग के कारण चमड़ी शुष्क हो गई हो, खुजली अधिक होती हो तो अन्न त्यागकर केवल सेव का सेवन करने से लाभ होता है ।

सेव के छोटे-छोटे टुकड़े कर के काँच या चीनी मिट्टी के बर्तन में, ओस पड़े इस तरह खुली जगह, चाँदनी रात में रखकर, रोज सुबह, एक महीने तक सेवन करने से शरीर तंदुरुस्त बनता है ।

सेव को अंगारों पर सेककर खाने से अत्यंत बिगड़ी पाचनक्रिया सुधरती है ।

सेव का रस सोड़े के साथ मिलाकर दाँतों पर मलने से, दाँतों से निकलनेवाला खून बंद होता है एवं दाँतों पर जमी हुई पपड़ी दूर होती है व दाँत स्वच्छ होते हैं ।

बार-बार बुखार (ज्वर) आने पर अन्न का त्याग करके सिर्फ सेव का सेवन करें तो बुखार से मुक्ति मिलती है व शरीर बलवान बनता है ।

कुछ दिन केवल सेव के सेवन से सर्व प्रकार के विकार दूर होते हैं । पाचनक्रिया बलवान बनती है और स्फूर्ति आती है ।

यूनानी मतानुसार सेव हृदय, मस्तिष्क, लिवर तथा जठरा को बल देता है, भूख लगाता है, खून बढ़ाता है तथा शरीर की कान्ति में वृद्धि करता है ।

इसमें टार्टरिक एसिड होने से यह एकाध घंटे में पच जाता है और खाये हुए अन्य आहार को भी पचा देता है ।

सेव के गूदे की अपेक्षा उसके छिलके में विटामिन 'सी' अधिक मात्रा में होता है । अन्य फलों की तुलना में सेव में फास्फोरस की मात्रा सबसे अधिक होती है । सेव में लौहतत्त्व भी अधिक होता है अतः यह रक्त व मस्तिष्क संबंधी दुर्बलताओंवाले लोगों के लिये हितकारी है ।

विशेष : सेव शीतल है । इसके सेवन से कुछ लोगों को सर्दी-जुकाम भी हो जाता है । किसीको इससे कब्जियत भी होती है । अतः कब्जियतवाले पपीता खायें ।

अनार

'एक अनार सौ बीमार' वाली कहावत आपने सुनी ही होगी । मीठा अनार तीनों दोषों का शमन करनेवाला, तृप्तिकारक, वीर्यवर्द्धक, हल्का, कसैले रसवाला, बुद्धि तथा बलदायक एवं प्यास, जलन, ज्वर, हृदयरोग, कण्ठरोग, मुख की दुर्गन्ध तथा कमजोरी को दूर करनेवाला है । खटमिट्ठा अनार अग्निवर्धक, रुचिकारक, थोड़ासा पित्तकारक व हल्का होता है । पेट के कीड़ों का नाश करने व हृदय को बल देने के लिये अनार बहुत उपयोगी है । इसका रस पित्तशामक है । इससे उल्टी बंद होती है ।

अनार पित्तप्रकोप, अरुचि, अतिसार, पेचिश, खांसी, नेत्रदाह, छाती का दाह व व्याकुलता दूर करता है ।

गर्मियों में सिरदर्द हो, लू लग जाये, आँखें लाल-

(शेष पृष्ठ ३२ पर)

संस्था समाचार

फतेपुरा : दिनांक : २६ व २७ मार्च १९९७ को फतेपुरा गाँव (जिला पंचमहाल) में राष्ट्रसंत पूज्य बापूजी की सत्संग-सरिता में स्नान करने के लिए वनांचलो में बसे हुए आदिवासी भाई-बहन हजारों की तादाद में उमड़ पड़े । सत्संगामृत के साथ आदिवासी भाई-बहनों में भोजन-प्रसाद, वस्त्र व दक्षिणा वितरित की गयी ।

आदिवासी क्षेत्रों में आदिवासी लोगों को शिक्षण-प्रसार व आर्थिक लाभ देने के बहाने उनसे हिन्दू धर्म छुड़वाकर ईसाई धर्म अपनाने जैसी धर्मान्तरण की प्रवृत्तियाँ चलानेवाली संस्थाओं पर तीक्ष्ण प्रहार करते हुए पूज्य बापूजी ने कहा : **''ऐसी दुष्ट इरादोंवाली संस्थाओं का विरोध करते हुए, उनके किसी भी प्रलोभन में आकर अपना धर्म न छोड़ें।''** इस प्रसंग पर भारतीय संस्कृति के रक्षक पूज्य बापू ने भारतीय संस्कृति की महानता व सनातन धर्म के सच्चे मूल्य व सिद्धांतों को सरल भाषा में समझाया । गोधरा क्षेत्र के सांसद गोपालसिंह सोलंकी, झालौद क्षेत्र के विधायक दीताभाई व गणमान्य नागरिकों ने माल्यार्पण कर पूज्यश्री का स्वागत किया ।

दिनांक : २७ मार्च की शाम को पूर्णाहुति के बाद पूज्यश्री बायड़ (साबरकांठा) के लिए खाना हुए ।

बायड़ : दिनांक : २९ व ३० मार्च १९९७ को बायड़ (साबरकांठा) में सत्संग-समारोह का आयोजन हुआ। इस दो दिवसीय सत्संग-कार्यक्रम में पूज्य बापूजी की पीयूषवर्षी वाणी का रसपान करने के लिए दूर-दराज के क्षेत्रों से भक्त समुदाय इस कदर सत्संग-स्थल की ओर उमड़ा कि सत्संग पांडाल भी छोटा पड़ गया !

३० मार्च की शाम को सत्संग की पूर्णाहुति के बाद पूज्य बापू ने हिम्मतनगर के लिए प्रस्थान किया ।

गोरल (गुजरात) : दिनांक : १ व २ अप्रैल १९९७ को आयोजित सत्संग-कार्यक्रम में गोरल व आसपास के गाँवों के हजारों-हजारों श्रद्धालु भक्तों ने संतशिरोमणि पूज्य बापू के वचनामृतों का लाभ लिया । २ अप्रैल की शाम को पूर्णाहुति के बाद पूज्यश्री हिम्मतनगर आश्रम के लिए रवाना हुए । दिनांक : ५ अप्रैल को हिम्मतनगर से अमदावाद आश्रम पहुँचे ।

अमदावाद : साबरमती नदी के तट पर स्थित आश्रम में चेटीचंड के पावन पर्व पर दिनांक : ६ से ९ अप्रैल १९९७ तक ध्यान योग शक्तिपात साधना शिविर का आयोजन हुआ जिसमें देश-विदेश से आये हुए हजारों-हजारों श्रद्धालुजनों ने विश्वभर में भारतीय संस्कृति की पताका ऊँची फहरानेवाले पूज्य बापूजी की अमृतवाणी का लाभ लिया ।

पीतमपुरा (दिल्ली) : दिनांक ९ से १२ अप्रैल १९९७ तक पीतमपुरा, मधुबन चौक, दिल्ली में दिव्य सत्संग समारोह का आयोजन हुआ । प्रथम तीन दिन पूज्य बापूजी के शिष्य सुरेश ब्रह्मचारीजी व दिनांक १२ व १३ अप्रैल को विश्ववंद्य संत पूज्य बापूजी की अमृतमयी वाणी का लाभ दिल्ली की जनता ने लिया । पीतमपुरा, मधुबन चौक में पूज्य बापूजी की सत्संग सरिता में अवगाहन करने के लिए मानो लोगों का सैलाब उमड़ पड़ा था ।

पूज्य बापूजी ने यहाँ श्रद्धालुओं को संबोधित करते हुए कहा :

''प्रेम ही राज्य करता है, प्रेम ही सत्ता भोगता है, प्रेम का साम्राज्य ही सच्चा साम्राज्य है ।''

दिनांक : १४ अप्रैल को पूज्यश्री सोनीपत के लिए रवाना हुए ।

सोनीपत (हरियाणा) : मेहलाना रोड़ पर सेक्टर २३ के विशाल मैदान में दिनांक : १५ से २० अप्रैल १९९७ तक छः दिवसीय ध्यान योग शक्तिपात साधना शिविर का आयोजन हुआ । १५ से १७ अप्रैल तक दूर-सुदूर क्षेत्रों से आये हुए हजारों शिविरार्थियों ने भाग लिया । दिनांक : १८ से २० अप्रैल तक विद्यार्थियों के लिए आयोजित ध्यान योग शिविर में उत्तर भारत के १० हजार छात्र-छात्राओं ने भाग लिया ।

सोनीपत के अतिरिक्त जिला एवं सत्र न्यायाधीश

श्री पी. एल. गोयल, मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट डॉ. नीलिमा शांगला, हरियाणा के गृह राज्यमंत्री श्री रमेश कौशिक, हरियाणा के शिक्षा राज्यमंत्री श्री रामविलास शर्मा, उद्योगमंत्री श्री शशि मेहता, पूर्व सांसद श्री चिरंजीलाल शर्मा, स्थानीय विधायक श्री देवराज दीवान व शहर के कई गणमान्य नागरिकों ने फूल-मालाएँ अर्पित कर पूज्यश्री का अभिवादन किया ।

पूज्य बापूजी ने कहा : **''ध्यान से मन एकाग्र होता है । चंचल मन तो भटकता ही रहता है लेकिन शांति प्राप्त करने के लिए भागवत ज्ञान तथा भागवत भाव की गंगा में गोता लगाना चाहिए ।''** उन्होंने आगे कहा : **''सत्कर्म करने से शांति मिलती है ।''**

दिनांक : २० की शाम को शिविर की पूर्णाहुति के बाद पूज्यश्री दिल्ली के लिए रवाना हुए ।

दिल्ली : दिनांक : २२ अप्रैल १९९७ को देश-विदेश से आये हुए हजारों-हजारों पूनम व्रतधारियों ने वंदे मातरम् रोड़ पर स्थित आश्रम में ब्रह्मनिष्ठ संत पूज्य बापूजी के दर्शन व उनके सत्संगामृत का पान कर अन्न-जल ग्रहण किया । पूनमव्रतधारी साधक यानि पूज्य बापूजी के वे दीक्षित शिष्य, जो कैसी भी प्रतिकूल परिस्थिति होने पर भी हर पूनम के दिन अपने गुरु के दर्शन करने के लिए भारतभर के किसी भी कोने में पहुँच ही जाते हैं ।

इस वैशाखी पूर्णिमा के अवसर पर पूज्य बापूजी ने विशाल जनसमूह को संबोधित करते हुए कहा :

''प्रत्येक व्यक्ति को चाहिए कि वह अपना कर्त्तव्य ईश्वर की पूजा समझकर, पूरी ईमानदारी व तत्परता से करे । इसीमें जीवन का कल्याण है ।

आज कल उत्तर भारत में पूज्य गुरुदेव के सत्संग को जन-जन तक पहुँचाने के लिए 'ऋषि प्रसाद अभियान' के विशेष आयोजन किये जा रहे हैं । भिवानी, रेवाड़ी, बहादुरगढ़, गुड़गाँव, पानीपत, करनाल, रोहतक, फरीदाबाद, गाजियाबाद, मुजफ्फरनगर आदि स्थानों पर साधक परिवार के सभी सदस्य एकजुट होकर कार्य कर रहे हैं । ५१ हजार सदस्य संख्या के लक्ष्यांक के साथ दिल्ली महानगर में सेवादार सदस्यता अभियान के अलावा पत्रिका के वितरण एवं प्रसार की सेवा को प्रभावी बनाने के लिए विशेष सर्वेक्षण कार्य में भी जुटे हुए हैं । दिल्ली आश्रम द्वारा जनवरी से अब तक अल्प अवधि में ही ३०,००० से अधिक सदस्य बनाये जा चुके हैं ।

'ऋषि प्रसाद' के माध्यम से पूज्यश्री का संदेश सारे देश में गूँज उठे इसलिए दिल्ली से अमदावाद तक ४२ दिवसीय विशाल पदयात्रा का संकल्प लिया गया है जो दिनांक ६ जून १९९७ को दिल्ली से प्रारंभ होकर गुरुपूर्णिमा पर अमदावाद पहुँचेगी ।

'ऋषि प्रसाद अभियान' की इस अवधि के दौरान् ही दिल्ली सरकार ने पत्र क्रमांक : एफ/१५/१/रा/रा ७७/३३७७, दिनांक : २३-२-'९७ द्वारा 'ऋषि प्रसाद' को सभी विद्यालयों के पुस्तकालय में रखने हेतु स्वीकृति भी प्रदान की है ।

(पृष्ठ ३० का शेष)

लाल हो जायें तब अनार का शरबत गुणकारी सिद्ध होता है ।

इसका रस स्वरयंत्र, फेफड़ों, हृदय, यकृत, आमाशय तथा आँतों के रोगों में लाभप्रद है । अनार खाने से शरीर में एक विशेष प्रकार की चेतना-सी आती है ।

ताजे अनार के दानों का रस निकालकर उसमें मिश्री डालकर पीने से हर प्रकार का पित्तप्रकोप शांत होता है ।

अनार के रस में सैंधा नमक व शहद मिलाकर लेने से अरुचि मिटती है ।

अनार की सूखी छाल आधा तोला बारीक कूटकर, छानकर उसमें थोड़ा-सा कपूर मिलायें । यह चूर्ण दिन में दो बार पानी के साथ मिलाकर पीने से भयंकर कष्टदायक खाँसी मिटती है ।

अनार के छिलके का चूर्ण नागकेशर के साथ मिलाकर देने से अर्श (बवासीर) का रक्तस्राव बंद होता है ।

अनार का रस शरीर में शक्ति, स्फूर्ति तथा स्निग्धता लाता है । बच्चों के पेट में कीड़े हों तो उन्हें नियमितरूप से सुबह-शाम २-३ चम्मच अनार का रस पिलाने से कीड़े नष्ट हो जाते हैं ।

अनार का छिलका मुँह में डालकर चूसने से खांसी में लाभ होता है ।

लखनऊ में पूज्यश्री का जन्म-महोत्सव समा

उत्तर प्रदेश के राज्यपाल श्री रोमेश भंडारी पू. बापूजी का भावभीना सस्नेह स्वागत करते हुए गद् [illegible] हो रहे हैं।

भारतभर में घूम-घूमकर भारतवासियों की असली सेवा करनेवाले भाजपा के वरिष्ठ नेता श्री अटलबिहारी वाजपेयी पूज्यश्री का भावभीना स्वागत करते हुए
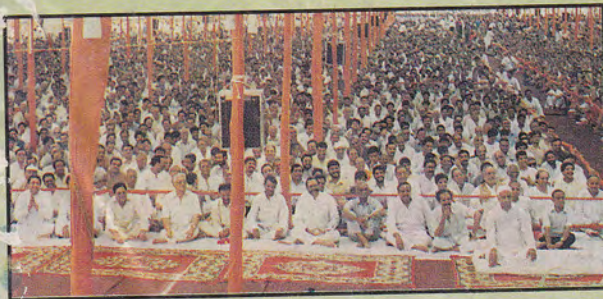
उत्तर प्रदेश के साधक भाई- बहन पूज्यश्री की ज्ञानवर्षा में स्नान करते हुए

इन्दौर आश्रम में बालयोगी नारायण स्वामी के सानिध्य में युवा उत्कर्ष शिबिर में आये हजारो छात्र-छात्राएँ